WWW.GRADESETTER.COM

1. ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रारंभिक विद्रोह

1757 के पश्चात् सौ वर्षों में विदेशी राज्य तथा उससे संलग्न कठिनाइयों के विरुद्ध अनेक आंदोलन, विद्रोह तथा सैनिक विप्लव हुए। अपनी स्वतंत्रता के खो जाने पर स्वशासन में विदेशी हस्तक्षेप प्रशासनिक परिवर्तनों का आना, अत्यधिक करों की मांग, अर्थव्यवस्था का भंग होना, इन सबसे भारत के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न समय पर प्रतिक्रिया हुई उससे बहुत सी व्यवस्था फैली।

प्रारंभिक विद्रोह के सामान्य कारण

राजनीतिक कारण

इन विद्रोह के लिए अनेक प्रकार के राजनीतिक कारण जिम्मेदार थे।

सहायक संधि प्रणाली: वैल्जली ने भारतीय राज्यों को अंग्रेजी राजनैतिक परिधि में लाने के लिए सहायक संधि प्रणाली का प्रयोग किया। इस प्रणाली ने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के प्रसार में विशेष भूमिका निभाई और उन्हें भारत का एक विस्तृत क्षेत्र हाथ लगा। इस कारण भारतीय राज्य अपनी स्वतंत्रता खो बैठे।

गोद-प्रथा की समाप्ति: गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी के शासन काल में भारत के कुछ प्रमुख देशी राज्यों, यथा--झांसी, उदयपुर, संभलपुर, नागपुर आदि के राजाओं के कोई पुत्र नहीं थे। प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था के प्रावधानों के तहत योग्य उत्तराधिकारी के चयन के लिए ये राजा अपने मनोनुकूल किसी बच्चे को गोद ले सकते थे। परन्तु डलहौजी ने गोद लेने की इस प्रथा को अमान्य घोषित कर इन देशी राज्यों (रियासतों) को कम्पनी के शासनाधिकार में ले लिया। कम्पनी द्वारा शुरू की गई इस नयी नीति से सभी राजा असंतुष्ट थे और वे किसी ऐसे अवसर की तलाश में थे, जब वे अंग्रेजों को दबोकर अपनी रियासत पर अधिकार जमा सकें।

अवध के साथ विश्वासघात: 1856 में कम्पनी द्वारा अवध राज्य का अधिग्रहण कर लिया गया था। इसके पूर्व अवध के नवाबों के साथ झूठी मित्रता कर अंग्रेजों ने उनसे पूरी सहायता ली थी। पर, जब उनका साम्राज्य विस्तृत हो गया, तब उन्होंने अवध को भी अंग्रेजी साम्राज्य के अधीन कर लिया। इससे अवध की जनता में अंग्रेजों के प्रति अत्यधिक असंतोष था और इस असंतोष के कारण वहां के सैनिक उत्तेजित हो गए।

बहादुरशाह का अपमान: मुगल साम्राज्य के शासक बहादुरशाह का डलहौजी ने घोर अपमान किया। बहादुरशाह को लाल किला खाली करने का आदेश मिला, सिक्कों से उसका नाम हटाया गया और उसके पुत्र कोयाश को अंग्रेजों द्वारा राजकुमार घोषित कर दिया गया, जबकि बहादुरशाह का ज्येष्ठ पुत्र मिर्जा जवांबख्स वास्तविक उत्तराधिकारी था। अंग्रेजी शासन के इस कृत्य से राजपरिवार और जनसाधारण दोनों में रोष था। इसीलिए क्रांति की शुरूआत के समय बहादुरशाह ने यथाशीघ्र नेतृत्व प्रदान करना स्वीकार कर लिया।

दत्तक प्रथा की समाप्ति: लॉर्ड डलहौजी ने गोद प्रथा को समाप्त करने के साथ-साथ दत्तक पुत्रों से जागीर जब्त कर लेने का निश्चय किया और इसे भी रोकवा दी। नाना साहब स्वर्गीय पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र थे और इनका पेंशन रोककर अंग्रेजों ने दुश्मनी मोल ले ली।

अफगानिस्तान में अंग्रेजों की पराजय: वर्ष 1841-42 में अफगानिस्तान में अंग्रेजों को पराजय का सामना करना पड़ा। इससे इस धारणा से उबड़ने का मौका मिला कि अंग्रेज अपराजेय हैं। भारत के क्रांतिकारियों को इस युद्ध से नयी आशा और प्रेरणा मिली कि हम भी अंग्रेजों को देश से निकाल सकते हैं और इसके लिए उन्होंने विद्रोह शुरू कर दिया।

सामाजिक कारण

कम्पनी के शासन-विस्तार के साथ-साथ अंग्रेजों ने भारतीयों के साथ अमानुषिक व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया था। काले और गोरे का भेद स्पष्ट रूप से उभरने लगा था। अंग्रेजों द्वारा भारतीयों को गुलाम समझा जाता था। समाज में अंग्रेजों के प्रति उपेक्षा की भावना बहुत अधिक बढ़ गई थी, क्योंकि उनके रहन-सहन, अन्य व्यवहार एवं उद्योग-आविष्कार से भारतीय व्यक्तियों की सामाजिक मान्यताओं में अंतर पड़ता था। अपने सामाजिक जीवन में वे अंग्रेजों का प्रभाव स्वीकार नहीं करना चाहते थे। अंग्रेजों की खुद को श्रेष्ठ और भारतीयों को हीन समझने की भावना ने भारतीयों को क्रांति करने की प्रेरणा प्रदान की।

धार्मिक कारण

भारत में अंग्रेजों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में भारतीयों पर धार्मिक दृष्टि से भी कुठाराघात किया था। इस काल में योग्यता की जगह धर्म को पद का आधार बनाया गया। जो कोई भी भारतीय ईसाई धर्म को अपना लेता था, उसकी पदोन्नति कर दी जाती थी, जबकि भारतीय धर्म का अनुपालन करने वाले को सभी प्रकार से अपमानित किया जाता था। इससे भारतीय जनसाधारण के बीच अंग्रेजों के प्रति धार्मिक असहिष्णुता उत्पन्न हो गई थी। फिर, ईसाई धर्म का इतना अधिक प्रचार किया गया कि भारतीयों को यह संदेह होने लगा कि अंग्रेज उनके धर्म का सर्वनाश करना चाहते हैं। परिणामस्वरूप भारतवासी अंग्रेजों को धर्मद्रोही समझकर उन्हें देश से बाहर निकालने का मार्ग ढूंढने लगे और 1857 में जब मौका मिला, तब हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध प्रहार किया।

आर्थिक कारण

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत के उद्योग धंधों को नष्ट कर दिया तथा श्रमिकों से बलपूर्वक अधिक से अधिक श्रम कराकर उन्हें कम पारिश्रमिक देना प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त अकाल सूखा और बाढ़ की स्थिति में भारतीयों की किसी भी प्रकार की सहायता नहीं की जाती थी और उन्हें अपने हाल पर मरने के लिए छोड़ दिया जाता था।

निम्न वर्गीय कृषकों तथा मजदूरों की स्थिति तो दयनीय थी ही, राजाओं और नवाबों तक की आर्थिक स्थिति बदहाल थी। भारत से प्राप्त खनिज संसाधनों और सस्ते श्रम के बल पर अंग्रेजों ने अपने उद्योग धंधों को विकास के चरम पर पहुंचा दिया, जबकि दूसरी ओर भारत में किसी नए उद्योग की स्थापना की बात तो दूर छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों को भी समाप्त कर दिया गया। इससे भारत के प्रत्येक वर्ग में अंग्रेजों के प्रति अविश्वास की भावना उत्पन्न हुई और वे व्यापक विद्रोह के सूत्रधार बन गए।

1857 से पूर्व के विद्रोह

1857 से पूर्व कई महत्वपूर्ण विद्रोह हुए जो निम्नलिखित प्रकार के थे—

चेरो-विद्रोह

बिहार के पलामू जिले में स्थानीय राजा एवं कंपनी के द्वारा जब जागीरदारों (चेरो) से जमीन छीनी जाने लगी, तब वहाँ के जागीरदारों ने

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

राजा एवं कम्पनी के विरुद्ध विद्रोह शुरू कर दिया। यह विद्रोह 1800 में आरम्भ हुआ और 1802 तक चला। इसका नेतृत्व भूषण सिंह नामक जमींदार ने किया था।

फकीर विद्रोह (बंगाल)

यह आंदोलन यद्यपि अठारहवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ किन्तु 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों तक चलता रहा। इस आन्दोलन का नेतृत्व एक फकीर नेता मजनूम शाह ने किया। फकीर, बंगाल के घुमन्तू धार्मिक मुसलमानों का एक समूह था। बंगाल के विलय के उपरांत 1776-77 में मजनूम शाह के नेतृत्व में फकीरों ने अंग्रेजी शासन की उपेक्षा करते हुये स्थानीय जमीदारों तथा किसानों से धन वसूलना प्रारम्भ कर दिया। मजनूम शाह की मृत्यु के पश्चात आंदोलन की बागडोर चिरागअली शाह ने संभाली। राजपूत, पठान एवं सेना के भूतपूर्व सैनिकों ने आन्दोलन को सहयोग प्रदान किया। चिराग अली शाह के नेतृत्व में आन्दोलन और तीव्र हो गया तथा इसका प्रसार उत्तरी बंगाल के जिलों में भी हो गया। भवानी पाठक और एक महिला देवी चौधरानी, इस आन्दोलन के दो प्रमुख हिन्दू नेता थे। कालान्तर में इस आन्दोलन के समर्थकों ने हिंसक गतिविधियां प्रारम्भ कर दीं तथा अंग्रेजों के स्वामित्व वाले ठिकानों को अपनी गतिविधियों का मुख्य केन्द्र बनाया। उन्होंने अंग्रेजी फैक्ट्रियों तथा सैनिक साजो-सामान के केन्द्रों पर अनेक डकैतियां डालीं। इसके कारण फकीरों और अंग्रेजों के मध्य अनेक झड़प हुयी। 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों तक अंग्रेजी सेनाओं ने आन्दोलन को कठोरतापूर्वक दबा दिया।

संन्यासी विद्रोह (बंगाल)

यह आन्दोलन 1770 में प्रारंभ हुआ किन्तु 19 वीं शताब्दी के दूसरे दशक (1820) तक चलता रहा। इस विद्रोह का प्रमुख कारण तीर्थ यात्रियों द्वारा तीर्थ स्थानों पर यात्रा करने पर प्रतिबन्ध लगाया जाना था। संन्यासी, मुख्यतया हिन्दू नागा और गिरी के सशस्त्र संन्यासी थे, जो कभी मराठों, राजपूतों तथा बंगाल और अवध के नवाबों की सेनाओं में सैनिक थे। 1770 में बंगाल के भयानक दुर्भिक्ष ने यहां के निवासियों को त्रस्त कर दिया था उसके पश्चात संन्यासियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध शस्त्र विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने बलपूर्वक धन वसूला तथा अंग्रेजी फैक्ट्रियों पर लूटपाट की। अंग्रेजों ने आन्दोलनकारियों से निपटने के लिये दमन का सहारा लिया तथा 1820 तक आन्दोलन को कुचल दिया। इसी सन्यासी विद्रोह का उल्लेख 'वन्देमातरम' के रचयिता बंकिम चन्द्र चटोपाध्याय ने अपने उपन्यास 'आनंद मठ' में किया है।

कूका विद्रोह (पंजाब)

इस आन्दोलन की शुरुआत जवाहरमल भगत (सियान साहिब) एवं उनके शिष्य बालक सिंह ने पश्चिमी पंजाब में की। उन्होंने हाजरो नामक स्थान को अपना मुख्यालय बनाया। इस आन्दोलन का उद्देश्य सिख धर्म में प्रचलित बुराइयों एवं अंधविश्वासों को दूर करके धर्म को शुद्ध बनाना था। इसके अन्य सिद्धांतों में जातीय भेदभाव का उन्मूलन, सिखों को समानता का अधिकार, मांस, मदिरा एवं अन्य नशीली वस्तुओं के सेवन से परहेज, अन्तरजातीय विवाह को प्रोत्साहन तथा महिलाओं में पर्दा प्रथा को दूर करना इत्यादि प्रमुख थे। प्रारम्भ में कूका आन्दोलन एक धार्मिक सुधार आन्दोलन था, किन्तु अंग्रेजों द्वारा पंजाब को हस्तगत कर लेने के पश्चात यह राजनैतिक आन्दोलन में परिवर्तित हो गया। कूका आन्दोलन के राजनीतिक स्वरूप अख्तियार करने पर अंग्रेज चिंतित हो गये तथा इसके दमन के प्रयास करने लगे। फलतः, कूका आन्दोलन के समर्थकों एवं अंग्रेजों में टकराव हुआ। अंग्रेजों ने आन्दोलन को कुचलने के जोरदार उपाय किये। 1872 में आन्दोलन के एक प्रमुख नेता राम सिंह को रंगून निर्वासित कर दिया गया, जहां 1885 में उनकी मृत्यु हो गयी।

सावंतवादी विद्रोह

यह विद्रोह 1844 में हुआ, जिसका नेतृत्व एक मराठा सरदार फोंड सावंत ने किया। सावंत ने कुछ सरदारों तथा देसाइयों की सहायता से कई किलों पर अधिकार कर लिया। बाद में अंग्रेज सेनाओं ने मुठभेड़ के पश्चात विद्रोहियों को परास्त कर दिया तथा किले से बाहर खदेड़ दिया। कई विद्रोही गोवा भाग गये तथा बचे हुए विद्रोहियों को पकड़कर उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया तथा उन्हें कड़ी सजा दी गयी।

पाड्यगारों का विद्रोह

दक्षिण भारत में अँग्रेजों के विरुद्ध हुए विद्रोहों में यह विद्रोह सबसे बड़ा था, जिसमें दक्षिण के पाड्यगारों (किलों के अधिपति) ने कम्पनी की अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और मालगुजारी देना बन्द कर दिया। यह विद्रोह 1801 से 1805 तक चला। इस विद्रोह का नेतृत्व कट्टबोम्मन नायकन नामक पाड्यगार ने किया था, जिसे अँगरेजों ने पकड़े जाने पर फाँसी दे दी थी।

वेलोर का सिपाही-विद्रोह

1806 में ईस्ट इंडिया कम्पनी के भारतीय सिपाहियों ने वेलोर में विद्रोह कर दिया, जिसमें अंग्रेज अधिकारी सिपाहियों की हिंसा के शिकार हुए। इस विद्रोह में टीपू सुल्तान के वंशजों ने सिपाहियों का साथ दिया था, जो कि वेलोर के दुर्ग में कम्पनी द्वारा नजरबन्द थे। विद्रोहियों ने दुर्ग पर मैसूर राज्य के राजचिह्नयुक्त झण्डे को भी फहरा दिया था। पर, 1806 के अन्त तक इस विद्रोह पर पूरी तरह काबू पा लिया गया था।

नायक-विद्रोह

बंगाल में मेदिनीपुर जिले में हुआ यह विद्रोह उन रैयतों (नायकों) ने किया था, जिन पर कम्पनी बढ़ी हुई दर से लगान चुकाने के लिए दबाव डाल रही थी। 1806 में कम्पनी ने इन नायकों की जमीन भी जब्त कर ली थी। नायकों ने इसके विरोध में कम्पनी के खिलाफ छापामार युद्ध शुरू कर दिया, जो 1816 तक चला। इस विद्रोह का नेतृत्व अचल सिंह नामक व्यक्ति ने किया था, जिसने नायकों को सैनिक प्रशिक्षण देकर एक कुशल पलटन तैयार की थी।

त्रावणकोर का विद्रोह

त्रावणकोर में वहाँ के दीवान वेलू थम्पी ने कम्पनी की बढ़ती ज्यादतियों के खिलाफ एक सशक्त विद्रोह का नेतृत्व किया, जिससे लगभग एक वर्ष तक त्रावणकोर पर कम्पनी का अधिकार समाप्तप्राय रहा। वेलू थम्पी ने 1808 में फ्रांस एवं अमेरिका से भी अँग्रेजों के विरुद्ध सहायता के लिए सम्पर्क स्थापित किया था। वेलू थम्पी ने स्थानीय शासकों से भी सहयोग के लिए सम्पर्क किया, पर किसी ने सहयोग नहीं किया। अन्त में, 1809 में कम्पनी की सेना के बहुत बढ़ आने पर वेलू थम्पी ने आत्महत्या कर ली, पर आत्मसमर्पण नहीं किया।

बरेली का विद्रोह

1816 में बरेली के लोगों ने स्थानीय अंग्रेज अधिकारियों की ज्यादतियों के खिलाफ हिंसक विद्रोह कर दिया, जिसमें दोनों पक्षों के सैकड़ों लोग हताहत हुए। इस विद्रोह का तात्कालिक कारण था कि अँग्रेजों ने स्थानीय लोगों पर चौकीदार-टैक्स आरोपित कर उसकी सख्ती से वसूली शुरू कर दी थी। इस विद्रोह में लोगों का नेतृत्व **मुफ्ती मुहम्मद एवाज** नामक व्यक्ति ने किया था।

अलीगढ़ का विद्रोह

आगरा प्रान्त के अन्तर्गत अलीगढ़ के किसान, जमींदार एवं सैनिक ईस्ट इंडिया कम्पनी की प्रशासनिक फेरबदल से असंतुष्ट थे। इसलिए, जब कम्पनी ने मालगुजारी बढ़ाने का निर्णय किया, तब उनका असंतोष विद्रोह

के रूप में फूट पड़ा। यह विद्रोह हाथरस के तालुकेदार दयारा... थे।

उड़ीसा के पायकों का ...

अन्य रियासतों की तरह ... वृद्धि कर दी थी और वे इन... अत्याचार से हजारों किसान... स्थानीय 'पायकों' ने, जो ... अँग्रेजों का प्रभावी प्रतिरोध ... मात दी। इस विद्रोह में प... 1817 में शुरू हुआ था, जो ... 1821 तक अंग्रेजों का ...

किरूर का विद्रोह

तृतीय आँग्ल-म... मान लिया था। 1824 ... से विरोध हो गया, जब ... को वास्तविक मानने ... के विरुद्ध कर दिया ... परन्तु, 1829 में रा... पर यह भी उसी ...

रामोसी-विद्रोह

पूना के राम... हो गए थे। ऊपर ... लगान की दर ... के नेतृत्व में वि... विद्रोह को दबा ... ने विद्रोह आरम्भ ... मोर्चा लिया।

अहोम-विद्रो...

1824 ... लिया था। ... और ईस्ट इं... द्वारा न मान... ने कम्पनी ... गदाधर सिं... रूपचन्द ...

विशाख...

म... लम्बी शृं... के बीच ... फिर से ... 1830 ... अँग्रेज... अन्य ... की ...

कुर...

गई ... रा...

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

के रूप में फूट पड़ा। यह विद्रोह 1817 में हुआ था। इस विद्रोह के नेता पुरी के तालुकेदार दयाराम और मुरसान के तालुकेदार भगवन्त सिंह थे।

उड़ीसा के पायकों का विद्रोह

उड़ीसा के पायकों की तरह अंग्रेजों ने उड़ीसा में भी भूमि-कर में बेतहाशा वृद्धि कर दी थी और वे इसकी वसूली भी बड़ी सख्ती से कर रहे थे। इस अत्याचार से हजारों किसान खेतों को छोड़कर जंगल भागने लगे। परन्तु, स्थानीय पायकों ने, जो कि मुगलों एवं मराठों के विरुद्ध मोर्चा ले चुके थे, अंग्रेजों का प्रभावी प्रतिरोध किया और खुर्दा -जैसे स्थानों पर उन्हें करारी मात दी। इस विद्रोह में पायकों का नेतृत्व **जगबन्धु** ने किया था। यह विद्रोह 1817 में शुरू हुआ था, जो 1818 में आकर शिथिल पड़ा गया, यद्यपि जगबन्धु 1821 तक अंग्रेजों का प्रतिकार करता रहा।

कित्तूर का विद्रोह

तृतीय आँग्ल-मराठा-युद्ध के बाद अँग्रेजों ने कित्तूर को स्वतंत्र राज्य मान लिया था। 1824 में उत्तराधिकार के प्रश्न पर अँग्रेजों का कित्तूर राज्य से विरोध हो गया, जब उन्होंने अन्तिम शासक शिवलिंग रुद्र के उत्तराधिकारी को वास्तविक मानने से इन्कार कर दिया। ऐसे में *महारानी चेनम्मा* ने अँग्रेजों के विरुद्ध कर दिया, पर 1824 के अन्त तक अँग्रेजों ने इस दबा दिया। परन्तु, 1829 में *रायप्पा* के नेतृत्व में कित्तूर में एक बार फिर विद्रोह हुआ, पर यह भी उसी वर्ष दबा दिया गया।

रामोसी-विद्रोह

पूना के रामोसी (मराठायुगीन पुलिस) अँग्रेजों के शासनकाल में बेगार हो गए थे। ऊपर से उनके पास जो जमीन बची थी, उस पर अँग्रेजों ने लगान की दर बहुत बढ़ा दी। ऐसे में रामोसियों ने 1822 में **चित्तूर सिंह** के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया और अँग्रेजों पर हमले शुरू कर दिए। इस विद्रोह को दबा दिया गया। 1826 में फिर से **उमाजी** के नेतृत्व में रामोसियों ने विद्रोह आरम्भ कर दिया। इस बार 1829 तक रामोसिसों ने अँग्रेजों से मोर्चा लिया।

अहोम-विद्रोह

1824 में बर्मा-युद्ध के बाद अंग्रेजों ने उत्तरी असम पर अधिकार कर लिया था। असम के अहोम-वंश के उत्तराधिकारियों ने इसे नापसन्द किया और ईस्ट इंडिया कम्पनी से असम छोड़कर चले जाने को कहा। कम्पनी द्वारा न मानने पर 1828 से 1830 तक **गदाधर सिंह** के नेतृत्व में असमियों ने कम्पनी के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, पर विद्रोह सफलता न हो सका। गदाधर सिंह को निर्वासित कर दिए जाने के बाद 1830 में असमियों ने **कुमार** रूपचन्द के नेतृत्व में विद्रोह किया, पर यह दूसरा विद्रोह भी असफल रहा।

विशाखापत्तनम् के विद्रोह

मद्रास प्रेसीडेंसी के अन्तर्गत विशाखापत्तनम् जिले में विद्रोहों की एक लम्बी शृंखला थी। पालकोण्डा के जमींदार विजयराम राजे ने 1793 से 1796 के बीच अँग्रेजों के साथ कई छिटपुट लड़ाइयाँ लड़ीं। 1831-21 के बीच फिर से पालकोण्डा के जमींदार ने राजस्व- वसूली के प्रश्न पर विद्रोह किया। 1830 में विशाखापत्तनम् के जमींदार वीरभद्र राजे ने पेंशन के सवाल पर अँग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया। 1832-34 में विशाखापत्तनम् के ही एक अन्य जमींदार जगन्नाथ राजे ने उत्तराधिकार-विवाद में अँग्रेजों के हस्तक्षेप की तजह से विद्रोह कर दिया।

कुर्ग का विद्रोह

दक्षिण भारत में 1833-34 में कुर्गवासियों द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ी गई लड़ाई संगठित नागरिक विद्रोह की मिसाल है। यदि वहाँ के राजा वीर राजा ने जनता की तरह की बहादुरी दिखाई होती, तो अँग्रेजों को निर्णायक हार का सामना करना पड़ता। परन्तु, ऐसा नहीं हुआ और उसके आत्मसमर्पण के बाद कुर्ग मई, 1834 में ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया।

गुमसुर का विद्रोह

1800-1805 के बीच हुए गंजाम-विद्रोह का नेतृत्व जिस श्रीकर भंज ने किया था, उसी के पुत्र **धनंजय** ने 1835 में गुमसुर की जमींदारी में लगान के बकाये के प्रश्न पर विद्रोह कर दिया। 1835 के अन्त में धनंजय की मृत्यु के बाद आम जनता ने इस विद्रोह को जा.. र ा। फरवरी, 1837 में अँग्रेजों ने इसे बुरी तरह दबा दिया।

वहाबी-आन्दोलन

वहाबी-आन्दोलन भारत में शुरू किया **बरेली के सैयद अहमद बरेलवी** ने। वैसे तो इस आन्दोलन का लक्ष्य इस्लाम में सुधार लाना था, पर भारत में इसका लक्ष्य अंग्रेजों एवं शोषक वर्ग के अन्य लोगों का विरोध करना हो गया। पटना इस आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र था, यद्यपि इसका प्रसार सम्पूर्ण भारत में हो गया था। यह आन्दोलन 1830 में शुरू हुआ और 1869 तक इसने अँग्रेजी सत्ता को परेशान किया। 1831 में बरेलवी की मृत्यु के बाद बिहार में एनायत अली और विलायत अली तथा बंगाल में तीतू मीर और दुदू मियाँ ने नेतृत्व किया। अन्तिम चरण में इस आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र पश्चिमोत्तर भारत हो गया था।

फराजी-आन्दोलन

यह आन्दोलन बंगाल के फरीदपुर जिले में आरम्भ हुआ था। इन आन्दोलन का भी मुख्य उद्देश्य इस्लाम में सुधार करना ही था, पर यह वहाबियों का विरोधी था। बंगाल में कालान्तर में इस आन्दोलन ने अँग्रेजों के विरोध का रुख अपना लिया। **शरीयतुल्ला** एवं उसके पुत्र **मुहम्मद मोहसिन (दुदू मियाँ)** ने बंगाल के गरीब किसानों के बीच काफी लोकप्रियता अर्जित की और उनके बल पर एक सशक्त एवं प्रभावी आन्दोलन चलाया।

सम्भलपुर का विद्रोह

सम्भलपुर में उत्तराधिकार के प्रश्न पर अँग्रेजों के हस्तक्षेप के विरोध में कई चरणों में गोंडों ने विद्रोह किए। पहला विद्रोह 1833 में हुआ, पर इसे शीघ्र ही दबा दिया गया। 1839 में **सुरेन्द्र साईं** के नेतृत्व में एक बार फिर विद्रोह हुआ, जिसका कारण नए भूमि-बन्दोबस्त के द्वारा राजस्व में अँग्रेजों द्वारा वृद्धि कर देना था। यह विद्रोह काफी लम्बे समय तक चलता रहा। 1857 की क्रान्ति के समय सम्भलपुर में सुरेन्द्र साईं ने मोर्चा सम्भाला, जिसमें अन्य जमींदारों ने भी उसका साथ दिया। 1862 में सुरेन्द्र साईं द्वारा आत्मसमर्पण कर देने के बाद यह विद्रोह कमजोर पड़ गया।

कोलिय-विद्रोह

कोलिय मध्यकालीन भारत में दुर्गों के सैनिक के रूप में काम किया करते थे। अँग्रेजों का शासन स्थापित हो जाने के बाद दुर्गों का महत्त्व नहीं रहा, उन्हें तोड़ दिया गया। ऐसे में ये बेगार हो गए और ये यत्र-तत्र विद्रो के झण्डे बुलन्द करते रहे। 1824 के अन्त में पश्चिमी घाट एवं कच्छ सीमावर्ती भाग के कोलियों ने विद्रोह किया, जिसे 1825 में दबा दिया ग 1839 में पूना के आसपास के कोलियों ने विद्रोह आरम्भ कर दिया, जो 1 तक चला। विभिन्न चरणों में भाऊ सरे, चिमनाजी यादव, नाना दरबारे भंगरिया, बापू भंगरिया आदि ने इस विद्रोह का नेतृत्व किया। इस को रामोसिसों ने भी सहयोग दिया था।

गडकरी-विद्रोह

गडकरी भी मराठा-क्षेत्र के दुर्गों में सैनिक के रूप में काम कि थे, जिसके बदले इन्हें करमुक्त जमीन मिला करती थी। अँग्रेजों हो जाने के बाद ये बेगार तो हो ही गए थे, इनकी जमीनों पर कर भ कर दिया गया। इसके विरोध में गाडकरियों ने 1844 में विद्रोह

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सामानगढ़, कोलहापुर आदि इस विद्रोह के प्रमुख केन्द्र थे। बाबाजी अहीरेकर इस विद्रोह के प्रमुख नेताओं में थे।

बुन्देला-विद्रोह

1835 में अंग्रेजों ने उत्तर-पश्चिमी प्रांत नामक एक नया प्रान्त बनाया, जिसमें मराठों से छीने गए आधुनिक मध्यप्रदेश के दो जिले भी मिलाये गए—सागर एवं दमोह। इस प्रान्त में 'बर्ड कमीशन' के प्रतिवेदन पर महलवारी बन्दोबस्त किया गया, जिसमें बीस वर्षों के लिए लगान का निर्धारण बढ़ी हुई दर पर कर दिया गया। इससे यहाँ के जमींदार नाराज हुए और जब उनसे लगान जबरदस्ती वसूल किया जाने लगा, तो सागर के दो जमींदारों जवाहर सिंह एवं मधुकरशाह ने 1842 में विद्रोह कर उत्पात मचाना शुरू कर दिया। 1843 तक इस विद्रोह पर काबू पा लिया गया और लगान भी 10 कम कर दिया गया था।

1857 का विद्रोह

आधुनिक भारत के इतिहास में 1857 अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है, क्योंकि इसी वर्ष से भारतीय स्वाधीनता संग्राम की शुरुआत मानी जाती है।

तात्कालिक कारण

1857 के विद्रोह के तात्कालिक कारण सैनिक थे। कम्पनी ने भारतीयों के प्रति जो भेदभाव की नीति रखी थी, उसका सर्वाधिक स्पष्ट रूप सेना में था। कारण, उसी में भारतीयों के रोजगार मिलने की सर्वाधिक संभावना थी। परन्तु, भारतीय सैनिकों के साथ बड़ा ही बुरा बर्ताव होता था। इस कारण हम पहले भी देखते हैं कि 1765 में बंगाल में, 1806 में वेल्लूर में, 1824 में बैरकपुर में और अन्यत्रा भी सेना में विद्रोह होते रहे। कितनी भी योग्यता या बहादुरी दिखाने पर भारतीयों को 'जमादार' से ऊँची पदोन्नति नहीं मिलती थी। भारतीय सैनिकों के वेतन, भत्ते आदि भी अँग्रेजों की तुलना में बहुत कम थे। साथ ही, खान-पान, रहन-सहन एवं व्यवहार में भी भारतीयों के साथ भेदभाव बरता जाता था। सेना में भी पादरी ईसाई-धर्म के प्रचार के लिए आते रहते थे। फिर, कम्पनी की नीति से जिस प्रकार भारतीय कृषि-अर्थव्यवस्था कुप्रभावित हो रही थी, उससे सैनिकों पर भी असर पड़ता था, क्योंकि, उस समय सैनिकों की आय उतनी नहीं थी कि उसकी आय से ही सारे परिवार के लोगों का पेट भर सके अर्थात् कृषि ही उसकी आवश्यकताओं को पूरा करती थी। वस्तुतः, सैनिक भी 'वर्दीधारी किसान' ही थे, जिस पर लगान का समान बोझ पड़ता था। इतना तक भारतीय सैनिकों ने बरदाश्त किया। पर, जब उनकी धार्मिक भावना पर चोट की गई, तब उन्होंने व्यापक विद्रोह कर दिया। लॉर्ड केनिंग के समय 1856 में 'द जेनरल सर्विस इनलिस्टमेण्ट एक्ट' के अनुसार यह घोषणा की गई कि भारतीय सैनिकों को युद्ध के लिए समुद्र पारकर विदेश भी जाना होगा। भारतीय समुद्र-यात्रा को पाप समझते थे। वे इसका विरोध कर ही रहे थे कि कम्पनी की सेना में एक नई 'इनफिल्ड' नामक राइफल आई, जिसमें गोली लगाने से पहले कारतूस को मुँह से खोलना पड़ता था और कारतूस में चर्बी चढ़ी होती थी। कतिपय उदाहरणों में गायों व सूअरों की चर्बी का प्रयोग किया गया था। सैनिकों को जैसे ही इस बात का पता चला, उनका क्षोभ सीमा पार कर गया। सबसे पहले बैरकपुर छावनी में मंगल पांडेय ने 29 मार्च, 1857 को ऐसी कारतूस के प्रयोग का विरोध किया। उसने काफी उत्पात मचाया—8 अप्रैल, 1857 को उसे फाँसी दे दी गई। 6 मई को सैनिकों ने फिर विरोध किया। अब कम्पनी ने भारतीय सैनिकों का रुख देखते हुए उनके शस्त्रास्त्रा जब्त करना आरम्भ कर दिया, सैनिकों को सजा दी जाने लगी और उन्हें बड़ी संख्या में कैद किया जाने लगा। अंत में, 10 मई, 1857 को सैनिकों ने व्यापक स्तर पर विरोध कर विद्रोह की घोषणा कर दी और क्रांति की शुरुआत हो गई।

क्रांति का संगठन, उद्देश्य और समय

संगठन: 1857 की क्रांति के संबंध में यह कहा जाता है कि संगठन का अभाव था। इस क्रांति के लिए उद्देश्य, निश्चित तथ्य, तैयारी, एकता, नेतृत्व आदि संगठन के सभी आवश्यक तत्त्वों का [illegible] है। क्रांति का संदेश नगरों से लेकर गांवों तक सम्प्रेषित किया गया [illegible] संप्रेषण के लिए कमल आदि प्रतीकों का प्रयोग किया गया [illegible]

उद्देश्य: 1857 की क्रांति का उद्देश्य निश्चित और स्पष्ट था। [illegible] को देश से निकालना और भारत को स्वाधीन कराना क्रांतिकारियों का [illegible] लक्ष्य था। यह कहना कि इस क्रांति में भाग लेने वाले सैनिकों, [illegible] या छोटे मोटे शासकों के निजी हित थे, क्रांति के महत्त्व को कम [illegible] कोशिश है। वस्तुतः यह विद्रोह एकता पर आधारित और अंग्रेजी [illegible] के विरुद्ध था।

समय: सम्पूर्ण देश में क्रांति की शुरुआत का एक ही समय [illegible] किया गया था और वह था 31 मई 1857 का दिन। जे.सी. विल्सन [illegible] तथ्य को स्वीकार किया था और कहा था कि 'प्राप्य प्रमाणों से यह [illegible] विश्वास हो चुका है कि एक साथ विद्रोह करने के लिए 31 मई, 1857 [illegible] दिन चुना गया था। यह संभव है कि कुछ क्षेत्रों में विद्रोह का सूत्रपात [illegible] समय के बाद हुआ हो। किन्तु, इस आधार पर यह आक्षेप नहीं [illegible] सकता कि 1857 की क्रांति के सूत्रपात के लिए कोई निश्चित समय [illegible] नहीं किया गया था।

क्रांति की शुरुआत

1857 की क्रांति का सूत्रपात मेरठ छावनी के स्वतंत्रता प्रेमी [illegible] मंगल पाण्डे ने किया। 29 मार्च, 1857 को नए कारतूसों के प्रयोग के [illegible] मंगल पाण्डे ने आवाज उठायी। ध्यातव्य है कि अंग्रेजी सरकार ने [illegible] सेना के उपयोग के लिए जिन नए कारतूसों को उपलब्ध कराया था, [illegible] सूअर और गाय की चर्बी का प्रयोग किया गया था। छावनी के भीतर [illegible] पाण्डे को पकड़ने के लिए जो अंग्रेज अधिकारी आगे बढ़े, उसे मौत के [illegible] उतार दिया। 8 अप्रैल, 1857 को मंगल पाण्डे को फांसी की सजा दी [illegible] उसे दी गई फांसी की सजा की खबर सुनकर सम्पूर्ण देश में क्रांति [illegible] माहौल स्थापित हो गया।

6 मई, 1857 को भारतीय सैनिकों ने फिर नए कारतूसों के प्र[illegible] का विरोध किया। विरोध करने वाले सैनिकों को दस वर्षों के कैद की [illegible] मिली। सैनिकों से हथियार छीन लिए गए। हथियार छीने जाने को [illegible] में पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं ने भी अपमान का विषय समझा। [illegible] स्थिति में सैनिकों के लिए अंग्रेजों से बदला लेना परम कर्त्तव्य हो [illegible] मेरठ के सैनिकों ने 10 मई, 1857 को ही जेलखानों को तोड़ना, भारतीय सैनिकों को मुक्त करना और अंग्रेजों को मारना शुरू कर दिया।

मेरठ में मिली सफलता से उत्साहित सैनिक दिल्ली की ओर [illegible] दिल्ली आकर क्रांतिकारी सैनिकों ने कर्नल रिप्ले की हत्या कर दी और दिल्ली पर अपना अधिकार जमा लिया। इसी समय अलीगढ़, इटावा, आजमगढ़, गोरखपुर, बुलन्दशहर आदि में भी स्वतंत्रता की घोषणा की जा चुकी [illegible]

एकता का प्रदर्शन

1857 की क्रांति में हिन्दू और मुसलमानों ने एक साथ मिलकर [illegible] लिया। क्रांति का मसविदा तैयार करने से लेकर क्रांति के क्रियान्वयन [illegible] दोनों सम्प्रदाय के लोगों ने एक-दूसरे का पूरा साथ दिया। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अंग्रेजों के विरोध में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच वैसी एकता फिर कभी दिखाई नहीं पड़ी। इसका कारण यह था कि अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति को हिन्दुओं और मुसलमानों को तोड़ने में [illegible] नहीं किया था। फिर, अंग्रेजी सरकार ने जिस नए कारतूस को भारतीय सैनिकों के प्रयोग के लिए दिया था, उसमें गाय और सूअर की चर्बी [illegible] उपयोग किया गया था। इससे दोनों धर्मों के सैनिकों ने अंग्रेजी सरकार का विरोध किया।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

विद्रोह के प्रमुख केंद्र एवं नेतृत्वकर्ता

1857 के विद्रोह का नेतृत्व दिल्ली के सम्राट बहादुरशाह जफर कर रहे थे। यह नेतृत्व औपचारिक एवं नाममात्र का था। विद्रोह का वास्तविक नेतृत्व बख्त खां के हाथों में था, जो बरेली के सैन्य विद्रोह के अगुआ थे। उनके साथ सैन्य साथियों के साथ दिल्ली पहुंचे थे। बख्त खां के नेतृत्व में सेना एवं न्यायालय सम्राट के नाम से सार्वजनिक मुद्दों की सुनवाई करते थे। बहादुरशाह जफर का विद्रोहियों पर न तो नियंत्रण था न ही ज्यादा प्रभाव था। बहादुरशाह का पूर्वी व्यक्तित्व, वृद्धावस्था तथा नेतृत्व अक्षमता विद्रोहियों को प्रेरित करने में सक्षम नहीं थी।

कानपुर में विद्रोह का नेतृत्व नाना साहब (द्वितीय के दत्तक पुत्र) ने किया। यहां 4 जून 1857 को विद्रोह में सभी की सहानुभूति बेगम के साथ थी। बेगम हजरत महल को लखनऊ का नवाब घोषित कर दिया गया तथा मुहम्मद हसन को मुख्य कादिर की स्थापना की गयी। इसमें हिन्दुओं एवं मुसलमानों की समान भागीदारी थी। यहां के अंग्रेज रेजीडेंट हेनरी लारेंस ने अपने कुछ वफादार सैनिकों के साथ ब्रिटिश रेजीडेंसी में प्रश्रय लिया। लेकिन विद्रोहियों ने रेजीडेंसी पर आक्रमण कर दिया। तत्पश्चात ब्रिगेडियर इंग्लिश ने हेनरी लारेंस को मौत के घाट उतार दिया। बाद में सर जेम्स आउट्रम तथा सर हेनरी लारेंस का बहादुरीपूर्वक प्रतिरोध किया। बाद में सर जेम्स आउट्रम तथा सर हेवलॉक ने लखनऊ को जीतने का यथासंभव प्रयास किया पर वे भी सफल नहीं हो सके। अंततः नये ब्रिटिश कमांडर इन-चीफ सर कोलिन कैम्पबेल ने गोरखा रेजीमेंट की सहायता से मार्च 1858 में नगर पर अधिकार प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। मार्च 1858 तक लखनऊ पूरी तरह अंग्रेजों के नियंत्रण में आ गया फिर भी कुछ स्थानों पर छिटपुट विद्रोह की घटनायें होती रहीं।

रोहिलखण्ड के पूर्व शासक के उत्तराधिकारी खान बहादुर ने स्वयं को बरेली का सम्राट घोषित कर दिया। कम्पनी द्वारा निर्वासित की गई पेंशन से असंतुष्ट होकर अपने 40 हजार सैनिकों की सहायता से खान बहादुर ने लम्बे समय तक विद्रोह का झंडा बुलंद रखा।

बिहार में एक छोटी रियासत जगदीशपुर के जमींदार कुंवर सिंह ने यहां विद्रोह का नेतृत्व किया। इस 70 वर्षीय बहादुर जमींदार ने दानापुर से आरा पहुंचने पर सैनिकों को सुदृढ़ नेतृत्व प्रदान किया तथा ब्रिटिश शासन को कड़ी चुनौती दी।

फैजाबाद के मौलवी अहमदउल्ला 1857 के विद्रोह के एक अन्य प्रमुख नेतृत्वकर्ता थे। वे मूलतः मद्रास के निवासी थे। बाद में वे फैजाबाद आ गये थे तथा 1857 विद्रोह के अन्तर्गत जब अवध में विद्रोह हुआ तब मौलवी अहमदउल्ला ने विद्रोहियों को एक सक्षम नेतृत्व प्रदान किया।

किंतु 1857 के विद्रोह में इन सभी नेतृत्वकर्ताओं में सबसे प्रमुख नाम झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का था, जिसने झांसी में सैनिकों को ऐतिहासिक नेतृत्व प्रदान किया। झांसी के शासक राजा गंगाधर राव की मृत्यु के पश्चात लार्ड डलहौजी ने राजा ने दत्तक पुत्र को झांसी का राजा मानने से इंकार कर दिया तथा 'व्यपगत के सिद्धांत' के आधार पर झांसी को कम्पनी के साम्राज्य में मिला लिया। तदुपरांत गंगाधर राव की विधवा महारानी लक्ष्मीबाई ने 'मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी' का नारा बुलंद करते हुए विद्रोह का मोर्चा संभाल लिया। कानपुर के पतनोपरांत नाना साहब के दक्ष सहायक तात्या टोपे के झांसी पहुंचने पर लक्ष्मीबाई ने तात्या टोपे के साथ मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह प्रारंभ कर दिया। तात्या टोपे एवं लक्ष्मीबाई की सम्मिलित सेनाओं ने ग्वालियर की ओर प्रस्थान किया जहां कुछ अन्य भारतीय सैनिक उनकी सेना से आकर मिल गये। ग्वालियर के शासक सिंधिया ने अंग्रेजों का समर्थन करने का निश्चय किया तथा आगरा में शरण ली। कानपुर में नाना साहब ने स्वयं को पेशवा घोषित कर दिया तथा दक्षिण में अभियान करने की योजना बनायी। जून 1858 तक ग्वालियर पुनः अंग्रेजों के नियंत्रण में आ गया।

1857 का विद्रोह लगभग 1 वर्ष से अधिक समय तक विभिन्न स्थानों पर चला तथा जुलाई 1858 तक पूर्णतया शांत हो गया।

क्रांति का दमन

क्रांति के राष्ट्रव्यापी स्वरूप और भारतीयों में अंग्रेजी सरकार के प्रति गुस्से आक्रोश को देखकर अंग्रेजी सरकार घबरा गयी। क्रांति की विभीषिका को देखते हुए अंग्रेजी सरकार ने निर्ममतापूर्ण दमन की नीति अपनायी। तत्कालीन वायसराय लॉर्ड केनिंग ने बाहर से अंग्रेजी सेनाएं मंगवायीं। जनरल नील के नेतृत्व वाली सेना ने बनारस और इलाहाबाद में क्रांति को जिस क्रूरता से कुचला, वह पूर्णतः अमानवीय था। क्रांतिकारियों को छोड़ कर निहत्थे जनसाधारण का कत्ल किया गया, गांवों को लूटा गया और निर्दोषों को भी फांसी की सजा दी गई।

दिल्ली में बहादुरशाह को गिरफ्तार कर लेने के बाद नरसंहार शुरू हो गया था। कमाण्डर इन चीफ जनरल एनसन ने रेजिमेण्टों को आदेश दिया कि फिरोजपुर, जालंधर, फुलवर, अम्बाला आदि में निर्ममता के साथ लोगों की हत्या करवायी। सैनिका नियमों का उल्लंघन कर कैदी सिपाहियों में से अनेकों को तोप के मुंह पर लगाकर उड़ा दिया गया। पंजाब में सिपाहियों को घेरकर जिन्दा जला दिया गया।

अंग्रेजों ने केवल अपनी सैन्य शक्ति के सहारे ही क्रांति का दमन नहीं किया, बल्कि उन्होंने प्रलोभन देकर बहादुरशाह को गिरफ्तार करवा लिया, उसके पुत्रों की हत्या करवादी, सिक्खों और मद्रासी सैनिकों को अपने पक्ष में कर लिया। वस्तुतः, क्रांति के दमन में सिक्ख रेजिमेण्ट ने यदि अंग्रेजी सरकार की सहायता नहीं की होती, तो अंग्रेजी सरकार के लिए क्रांतिकारियों को नाकों चने चबाना टेढ़ी खीर ही साबित होता। क्रांति के दमन में अंग्रेजों को इसलिए भी सहायता मिली कि विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग समय में क्रांति का प्रारंभ प्रकट था।

क्रांति की असफलता के कारण

क्रांतिकारियों ने जिस उद्देश्य से 1857 की क्रांति का सूत्रपात किया था, उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। उन्होंने सोचा था कि अंग्रेजों को बाहर खदेड़ कर भारत को स्वाधीन कर देंगे। परन्तु, क्रांति के दमन के बाद अंग्रेजों ने ऐसी नीति अपनायी कि 90 और वर्षों तक भारतीयों को गुलाम बना रखने में सफल रहे। इस महान् क्रांति की असफलता के अनेक कारण थे जिनमें कुछ प्रमुख हैं--

(i) निश्चित समय की प्रतीक्षा न करना: 1857 की क्रांति की देशव्यापी शुरूआत के लिए 31 मई 1857 का दिन निर्धारित किया गया था। एक दिन क्रांति शुरू होने पर उसका व्यापक प्रभाव होता। परन्तु, सैनिकों ने आक्रोश में आकर निश्चित समय के पूर्व 10 मई, 1857 को ही विद्रोह कर दिया। सैनिकों की इस कार्यवाही के कारण क्रांति की योजना असफल हो गयी। निश्चित समय का पालन नहीं होने के कारण देश के विभिन्न क्षेत्रों में क्रांति की शुरूआत अलग-अलग दिनों में हुई। इससे अंग्रेजों को क्रांतिकारियों का दमन करने में काफी सहायता हुई। अनेक स्थानों पर 31 मई की प्रतीक्षा कर रहे सैनिकों के हथियार छीन लिए गए। यदि सभी क्षेत्रों में क्रांति का सूत्रपात एक साथ हुआ होता, तो तस्वीर कुछ और होती।

(ii) देशी राजाओं का देशद्रोही रूख: 1857 की क्रांति के दमन में अनेक देशी राजाओं ने अंग्रेजों की खुलकर सहायता की। पटियाला, जींद, अफगानिस्तान और नेपाल के राजाओं ने अंग्रेजों को सैनिकों के साथ-साथ आर्थिक सहायता भी की। देशी राजाओं की इस भूमिका ने क्रांतिकारियों का मनोबल तोड़ा और क्रांति के दमन में सरकार को प्रोत्साहित किया।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(iii) साम्प्रदायिकता का खेल: 1857 की क्रांति के दौरान अंग्रेजी सरकार हिन्दुओं और मुसलमानों को लड़ाने में तो सफलता प्राप्त नहीं कर सकी, परन्तु आंशिक रूप से ही सही साम्प्रदायिकता का खेल खेलने में सफल रही। साम्प्रदायिक भावनाओं को उभार कर ही अंग्रेजी सरकार ने सिक्ख रेजिमेण्ट और मद्रास के सैनिकों को अपने पक्ष में कर लिया। मराठों, सिक्खों और गोरखों को बहादुरशाह के खिलाफ खड़ा कर दिया गया। उन्हें यह महसूस कराया गया कि बहादुरशाह के हाथों में फिर से सत्ता आ जाने पर हिन्दुओं और सिक्खों के अत्याचार होगा। इसका मूल कारण था कि सम्पूर्ण पंजाब में बादशाह के नाम झूठा फरमान अंग्रेजों की ओर से जारी किया गया, जिसमें कहा गया था कि लड़ाई में जीत मिलते ही प्रत्येक सिक्ख का वध कर दिया जाएगा। सैनिकों के साथ-साथ जनसाधारण को ही गुमराह किया गया। इस स्थिति में क्रांति का असफल हो जाना निश्चित हो गया। जब देश के भीतर देशवासी ही पूर्ण सहयोग न दें, तो कोई भी क्रांति सफलता प्राप्त नहीं कर सकती।

(iv) सम्पूर्ण देश में प्रसारित न होना: 1857 की क्रांति का प्रसार सम्पूर्ण भारत में नहीं हो सका था। सम्पूर्ण दक्षिण भारत और पंजाब का अधिकांश हिस्सा इस क्रांति से अछूता रहा। यदि इन क्षेत्रों में क्रांति का विस्तार हुआ होता, तो अंग्रेजों को अपनी शक्ति को इधर भी फैलाना पड़ता और वे पंजाब रेजिमेण्ट तथा मद्रास के सैनिकों को अपने पक्ष में करने में असफल रहते।

(v) शस्त्रास्त्रों का अभाव: क्रांति का सूत्रपात तो कर दिया गया, किन्तु आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण क्रांतिकारी आधुनिक शस्त्रास्त्रों का प्रबंध करने में असफल रहे। अंग्रेजी सेना ने तोपों और लम्बी दूरी तक मार करने वाली बन्दूकों का प्रयोग किया, जबकि क्रांतिकारियों को तलवारों और भालों का सहारा लेना पड़ा। इसलिए, क्रांति को कुचलने में अंग्रेजों को सफलता प्राप्त हुई।

(vi) सहायक साधनों का अभाव: सत्ताधारी होने के कारण रेल, डाक, तार एवं परिवहन तथा संचार के अन्य सभी साधन अंग्रेजों के अधीन थे। इसलिए, इन साधनों का उन्होंने पूरा उपयोग किया। दूसरी ओर, भारतीय क्रांतिकारियों के पास इन साधनों का पूर्ण अभाव था। क्रांतिकारी अपना संदेश एक स्थान से दूसरे स्थान तक शीघ्र भेजने में असफल रहे। सूचना के अभाव के कारण क्रांतिकारी संगठित होकर अभियान बनाने में असफल रहे। इसका पूरा-पूरा फायदा अंग्रेजों को मिला और अलग-अलग क्षेत्रों में क्रांति को क्रमशः कुचल दिया गया।

(vii) सैनिक संख्या में अंतर: एक तो विद्रोह करने वाले भारतीय सैनिकों की संख्या वैसे ही कम थी, दूसरे अंग्रेजी सरकार द्वारा बाहर से भी अतिरिक्त सैनिक मंगवा लिया गया था। उस समय कम्पनी के पास वैसे 96,000 सैनिक थे। इसके अतिरिक्त देशी रियासतों के सैनिकों से भी अंग्रेजों को सहयोग मिला। अंग्रेज सैनिकों को अच्छी सैनिक शिक्षा मिली थी और उनके पास अधुनातन शस्त्रास्त्र थे, परन्तु अपने परम्परागत हथियारों के साथ ही भारतीय क्रांतिकारियों ने जिस संघर्ष क्षमता का परिचय दिया, उससे कई स्थलों पर अंग्रेजों के दांत खट्टे हो गए। फिर भी, अंततः सफलता अंग्रेजों के हाथों ही लगी।

क्रांति के परिणाम

1857 की क्रांति अपने तत्कालीन लक्ष्य की दृष्टि से असफल रही, परन्तु इस क्रांति ने स्वतंत्रता संग्राम के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इस क्रांति के परिणाम अच्छे और बुरे दोनों हुए। क्रांति का परिणाम अंग्रेजों और भारतीयों के लिए अलग-अलग हुआ।

1857 की क्रांति के जो परिणाम अंग्रेजों के पक्ष में गए, उनमें प्रमुख हैं--

सत्ता का हस्तांतरण: क्रांति के बाद भारत में सत्ता ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से निकलकर ब्रिटिश सरकार के हाथों में चली गयी। इसके लिए भारत शासन अधिनियम, 1858 पारित हुआ। अब भारत का शासन ब्रिटिश नीति से होने लगा। ऐसा करने से कम्पनी द्वारा शासन-व्यवस्था के लिए संगठित बोर्ड ऑफ कंट्रोल, द कोर्ट ऑफ प्रोप्राइटर्स तथा द कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स का विघटन हो गया। इनके स्थान पर सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया (भारत सचिव) के रूप में नए पद का गठन किया गया। इस सचिव की सहायता के लिए इंग्लैंड में एक मंत्रिमंडल भी गठन किया गया। अब भारत का गवर्नर जनरल ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधि बन गया और इसे वायसराय कहा जाने लगा। ब्रिटिश महारानी विक्टोरिया ने भारत में अच्छे शासन-प्रबंध की स्थापना के लिए कदम उठाने की घोषणा की। महारानी की इस घोषणा से भारतीयों का असंतोष कुछ समयों के लिए ठंढा पड़ गया।

सतर्कता में वृद्धि: 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेजों ने सेना और सामग्रियों पर एकाधिकार कर लिया, जिससे भविष्य में भारतीय क्रांति की ओर से उनके लिए कोई खतरा न उत्पन्न हो। इस समय से यह भी निश्चय किया गया कि किसी भी भारतीय को उच्च सैनिक पद प्रदान नहीं किया जाएगा। अंग्रेजों को इस नीति को क्रियान्वित करने से काफी सफलता प्राप्त हुआ।

शस्त्रास्त्र पर प्रतिबंध: अंग्रेजी सरकार ने भारत की साधारण जनता के बीच अस्त्र-शस्त्र रखने की मनाही कर दी। इससे भारतीयों की आत्मरक्षा शक्ति को पूर्ण रूप से पंगु बना दिया गया। दुर्भाग्यवश भारत के देशी राजाओं की अंग्रेजी सरकार की सेना अधुनातन शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो गई और सुरक्षित रहने का अवसर प्राप्त हुआ। जनसाधारण अपनी आत्मसुरक्षा के लिए पारम्परिक शस्त्रास्त्रों को रखने का जनसाधारण अपनी आत्मसुरक्षा के लिए पारम्परिक शस्त्रास्त्रों को रखने से भी वंचित हो गया।

देशी राजाओं से मित्रता: 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेजी सरकार ने देशी राजाओं के साथ फिर से मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित किए। इन राजाओं के साथ विरोध की नीति अपनाने की उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी थी। आगे फिर कोई दुष्परिणाम सामने न आए, इसलिए अंग्रेजी सरकार ने देशी राजाओं के साथ मित्रता करने और इसका लाभ उठाने की नीति अपनाया। इसी नीति को ध्यान में रखकर ब्रिटिश महारानी विक्टोरिया ने 1 नवम्बर, 1858 को देशी राजाओं का पूर्ण सम्मान किए जाने की घोषणा की।

पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में वृद्धि: 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेजी सरकार ने ऐसी शिक्षा-पद्धति को लागू किए जाने को प्रोत्साहित किया, जिससे भारतीय अपने धर्म और संस्कृति को भूल जाएं तथा पाश्चात्य संस्कृति की ओर आकृष्ट हों। पाश्चात्य देशों के वैचारिक आंदोलन से भारत के लोगों को नयी प्रेरणा मिली तथा वे लाभान्वित भी हुए, पर उन देशों की आडम्बरपूर्ण जीवन-पद्धति से भारतीयों का चरित्र-बल भी समाप्त होने लगा। भारत के लोगों के साथ ऐसा होना अंग्रेजों के लिए सुखदायक था।

भारतीयों से दूरी में वृद्धि: अंग्रेजों ने भारत में आरम्भ से गोरे और काले के आधार पर श्रेष्ठता और हीनता की भावना फैला रखी थी। 1857 की क्रांति के बाद तो प्रत्येक अंग्रेज भारतीयों से सावधान और अलग-थलग रहने लगा। अंग्रेजों को ऐसा महसूस होने लगा कि भारतीयों से दूरी बनाए रखना ही उनके हित में है, क्योंकि नजदीक आने से भारतीय अंग्रेजों के भेदों को जान लेंगे और उन्हें परेशान करने लगेंगे। क्रांति के दौरान अंग्रेज सतर्क हो गए और उस सतर्कता को उन्होंने लगभग हमेशा बनाए रखा।

सरकार की नीति में परिवर्त्तन: ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के अंतिम दौर में भारत में कठोर एवं दमनात्मक नीति को अपनाया गया था। 1857 की क्रांति को जन्म देने का श्रेय यदि लॉर्ड डलहौजी की दोषपूर्ण नीतियों को दिया जाए, तो उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्रांति के दौरान भारतीयों के असंतोष और रोष को देखकर अंग्रेजी सरकार भारतीयों के विचार पर भी ध्यान देने लगी। सरकार ऐसा अनुभव किया कि भारतीयों की पूर्णरूपेण उपेक्षा से परेशानियां बढ़ेंगी। भारतीयों के हित में तो सरकार की ओर से कोई कदम नहीं उठाया गया, पर अनेक प्रकार के आश्वासन अवश्य दिए जाने लगे।

1857 की क्रांति के परिणाम भारतीयों के पक्ष में भी रहे। भारतीयों के पक्ष में जो सकारात्मक परिणाम सामने आए, वे हैं--

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

1857 की क्रांति के संबंध में प्रमुख उक्तियां

1. 'वर्ष सत्तावन का विद्रोह सिपाही विद्रोह मात्र था।' — *फ्रेड राबर्ट्स*
2. '1857 की घटना सिर्फ गाय की चर्बी से उत्पन्न सैनिक उत्पात थी।' — *सर जॉन लॉरेंस*
3. '1857 के विद्रोह को या तो सिपाही विद्रोह या अनधिकृत राजाओं तथा जमींदारों का अनियोजित प्रयत्न अथवा सीमित किसान-युद्ध कहा जा सकता है।' — *एडवर्ड टॉम्पसन तथा जी.टी. गैरेट*
4. '1857 का विद्रोह स्वतंत्रता संघर्ष नहीं धार्मिक युद्ध था।' — *विलियम हॉवर्ड रसेल*
5. '1857 के विद्रोह में राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था और यह सैनिक विद्रोह से बढ़कर और कुछ भी नहीं था।' — *आर.सी. मजुमदार*
6. 'वर्ष सत्तावन का विद्रोह सिपाही विद्रोह नहीं, अपितु स्वतंत्रता प्राप्ति के निमित्त भारतीय जनता का संगठित संग्राम था।' — *जवाहरलाल नेहरू*
7. '1857 का विद्रोह केवल सैनिक विद्रोह नहीं था, अपितु यह भारतवासियों का अंग्रेजों के विरुद्ध धार्मिक, सैनिक शक्तियों के साथ राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा के लिए लड़ा गया युद्ध था।' — *जस्टिस मेकार्थी*
8. '1857 का विद्रोह स्वधर्म और राजस्व के लिए लड़ा गया राष्ट्रीय संघर्ष था।' — *विनायक दामोदर सावरकर*
9. '1857 का विद्रोह मुसलमानों के षड्यंत्र का परिणाम था।' — सर जेम्स आउट्रम
10. '1857 की क्रांति भारत की पवित्र भूमि से विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने का प्रयास थी।' — *डॉ. सैय्यद अताहर अब्बास रिजवी*
11. '1857 का विद्रोह विदेशी शासन से राष्ट्र को मुक्त कराने का देशभक्तिपूर्ण प्रयास था।' — बिपिन चन्द्र
12. '1857 का विद्रोह सचेत संयोग से उपजा राष्ट्रीय विद्रोह था।' — बेंजामिन डिजरैली
13. '1857 का विद्रोह सैनिक विद्रोह न होकर नागरिक विद्रोह था।' — जान ब्रूस नार्टन
14. '1857 के विद्रोह का आरंभिक स्वरूप सैनिक विद्रोह का ही था, किन्तु बाद में इसने राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लिया।' — एस.एस. सेन

आत्मबल में वृद्धि: 1857 की क्रांति अपने लक्ष्य को तत्काल प्राप्त करने में असमर्थ रही। परन्तु, इस क्रांति ने भारतीयों के आत्मबल में वृद्धि की और उनकी सुषुप्त चेतना को स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए जागृत किया। अब भारतीयों में स्वतंत्रता प्राप्ति की भावना बलवती हो गयी और उन्होंने स्वतंत्रता को अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य बना लिया। इस समय से एक नया भारत का अभ्युदय हुआ।

राजनीतिक जागृति: लंबी पराधीनता और शासकों को अपराजेय मानने की धारणा ने भारतीयों में आलस्य भर दिया था। पराधीनता को भारतीयों ने अपनी नियति मान ली थी। परन्तु, 1857 की क्रांति ने भारतीयों के शीतित रक्त को फिर से खौला दिया। क्रांति के बाद भारतीयों को ऐसा महसूस हुआ कि जोर लगाने पर स्वशासन की प्राप्ति आसानी से हो सकती है।

संगठन की प्रेरणा: यद्यपि 1857 की क्रांति को संगठित स्वरूप प्रदान करने की पूर्ण कोशिश की गई थी, तथापि संचार-व्यवस्था एवं सूचना प्रौद्योगिकी के अभाव के कारण मनोवांछित सफलता प्राप्त नहीं हो सकी थी। व्यापक संगठन के अभाव के कारण ही क्रांति को कुचल दिया गया था। इसलिए, इस क्रांति से आगे के क्रांतिकारियों को व्यापक संगठन की प्रेरणा प्राप्त हुई। 1857 की क्रांति से प्रेरणा पाकर ही आगे के वर्षों में अनेक क्रांतिकारी आंदोलनों का संचालन संभव हो सका।

एकता की प्रेरणा: 1857 की असफलता का कारण सम्पूर्ण भारतवासियों में एकता का अभाव भी था। सिक्ख और दक्षिण भारतीय क्रांति के विरुद्ध थे तथा अनेक देशी रियासतों के शासकों ने अंग्रेजों की सहायता की थी। जिन क्षेत्रों में क्रांति का सूत्रपात हुआ, वहां भी सभी वर्गों ने मिलकर अंग्रेजों का विरोध नहीं किया। एकता ही राष्ट्रीयता का मूल मंत्र है--इस तथ्य की ओर भारतीयों का ध्यान क्रांति के असफल हो जाने के बाद गया। अब उन्होंने ऐसा महसूस किया कि एक साथ चलकर ही आगे बढ़ा जा सकता है और लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

स्वतंत्रता आंदोलन को नयी दृष्टि: 1857 की क्रांति का जिस निर्ममता के साथ अंग्रेजी सरकार ने दमन किया था, उससे उसका असली चेहरा भारतीयों के सामने उजागर हुआ। अंग्रेजों के क्रूरतापूर्ण व्यवहार को देखने के बाद भारतवासियों ने अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने का संकल्प लिया। इस क्रांति से स्वतंत्रता आंदोलन को भविष्य में एक नयी दृष्टि मिली। विद्रोह के बदले असहयोग का मार्ग अपनाया गया, क्योंकि इससे अंग्रेजों को दमनात्मक अत्याचार का अवसर प्राप्त नहीं होता। शासन और शस्त्रास्त्र का नियंत्रण अंग्रेजी सरकार के हाथों में था और किसी भी प्रकार के विद्रोह का गला घोंट देने की क्षमता उसमें थी, इसलिए क्रांति के बाद विद्रोह का रास्ता छोड़ने की प्रेरणा मिली।

1857 का विद्रोह: स्वतंत्रता संघर्ष अथवा सैनिक विद्रोह?

वर्ष 1857 का विद्रोह शताब्दियों से शोषित, प्रताड़ित एवं उपेक्षित भारतीय जन-समूह की स्वतंत्रता प्राप्ति की तीव्र उत्कंठा का प्रतीक है। 1857 में हुए इस विद्रोह के सम्पूर्ण घटनाक्रम पर सूक्ष्म दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि यह एक राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत स्वतंत्रता संघर्ष था, परन्तु कुछ अंग्रेज इतिहासकारों और उनके समर्थक भारतीय इतिहासकारों द्वारा इसे 'सैनिक विद्रोह' अथवा 'गदर' की संज्ञा प्रदान कर इसके महत्त्व को कम करने की कोशिश की जाती है।

फ्रेड राबर्ट्स, एडवर्ड टॉम्पसन, जी.टी. गैरेट, सर जॉन सिले, जेम्स आउट्रम, विलियम हॉवर्ड रसेल, जी.बी. मैल्लेसन आदि पाश्चात्य इतिहासकारों के साथ-साथ रमेशचन्द्र मजुमदार, सुरेन्द्रनाथ सेन, हरिप्रसाद चट्टोपाध्याय, पूरनचंद जोशी आदि भारतीय इतिहास 1857 के विद्रोह को सैनिकों द्वारा छोटे स्तर पर किए गए विद्रोह के रूप में व्याख्यायित करते हैं। इनका मानना है कि 1857 के विद्रोह में राष्ट्रीयता की भावना का सर्वथा अभाव था।

दूसरी ओर, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, विनायक दामोदर सावरकर, एस.ए.ए. रिजवी, बेंजामिन डिजरैली, जस्टिस मेकार्थी, जान ब्रूस नार्टन, बिपिन चन्द्र आदि-जैसे इतिहासकार 1857 के विद्रोह को भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रथम संघर्ष की संज्ञा दी है। इनका मानना है कि वर्ष 1857 का आन्दोलन जन-जीवन से सम्पृक्त, भारत से विदेशी आततायियों को निकालने के उद्देश्य से संबद्ध तथा एक संगठित और सुनियोजित कार्यक्रम था।

1857 का संग्राम यदि सैनिक विद्रोह मात्र था, तो उसमें सिर्फ सैनिकों ने ही भाग क्यों नहीं लिया? मेरठ से उठी क्रांति की लहर ने दो दिनों के भीतर ही दिल्ली को भी अपनी चपेट में ले लिया। वस्तुतः, विद्रोह में ग्रामीण और शहरी जनता सम्मिलित थी। हां, क्रांति की शुरूआत सैनिकों ने की थी।

वर्ष 1857 के विप्लव में क्रुद्ध सिपाहियों के साथ-साथ अंग्रेजों के अत्याचार से क्षुब्ध जनसाधारण ने भी सक्रिय रूप से भाग लिया था। इसलिए, इसे मात्र 'सैनिक विद्रोह' की संज्ञा देना युक्तिसंगत नहीं है। डॉ. आर.सी. मजूमदार का यह कहना कि 'तथाकथित 1857 का प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम न तो प्रथम था, न ही राष्ट्रीय और न ही स्वतंत्रता संग्राम था' सर्वथा अतिशयोक्तिपूर्ण और सत्यता से परे है। स्वतंत्रता की भावना से उद्वेलित हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों का सम्मिलित होकर विदेशियों को अपने देश से निकालने का पहला प्रयास 1857 में ही हुआ। इसलिए, 1857 की क्रांति को 'भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम का प्रथम उद्घोष' कहना सर्वथा युक्तिसंगत है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सारांश

विद्रोह—उपनिवेशवादी नीतियों एवं शोषण का परिणाम

आर्थिक कारण—नयी राजस्व व्यवस्था के तहत भारी करारोपण, बेदखली, भारतीय उत्पादों के विरुद्ध भेदभावपूर्ण प्रशुल्क नीति, परंपरागत हस्तशिल्प उद्योग का विनाश, आधुनिक औद्योगिक व्यवस्थता को प्रोत्साहन न देना, जिसने कृषक, जमींदार एवं शिल्पकारों को दरिद्र बना दिया।

राजनीतिक कारण—लार्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीतियां, ब्रिटिश शासन का विदेशीपन, दोषपूर्ण न्याय व्यवहार।

प्रशासनिक कारण— अंग्रेजों की शासन पद्धति से भारतीयों का असंतुष्ट होना, परंपरागत भारतीय शासन पद्धति की समाप्ति, उच्च पदों पर केवल अंग्रेजों की नियुक्ति तथा अंग्रेजी को सरकारी भाषा बनाना।

सामाजिक और धार्मिक कारण— अंग्रेजों में प्रजातीय भेदभाव तथा श्रेष्ठता की भावना, ईसाई मिशनरियों को प्रोत्साहन, विभिन्न सामाजिक सुधार कार्यक्रम तथा नये नियमों का निर्माण।

सैनिक कारण— सैनिकों के वेतन एवं भत्ते में आर्थिक असमानता एवं भेदभाव, उनका मनोवैज्ञानिक एवं धार्मिक उत्पीड़न।

तात्कालिक कारण— चर्बीयुक्त कारतूसों का प्रयोग।

विद्रोह के केंद्र एवं नेता

दिल्ली	— जनरल बख्त खां
कानपुर	— नाना साहब
लखनऊ	— बेगम हजरत महल
बरेली	— खान बहादुर
बिहार	— कुंवर सिंह
फैजाबाद	— मौलवी अहमदउल्ला
झांसी	— रानी लक्ष्मीबाई
इलाहाबाद	— लियाकत अली
ग्वालियर	— तात्या टोपे
गोरखपुर	— गजाधर सिंह
फर्रुखाबाद	— नवाब तफज्जल हुसैन
सुल्तानपुर	— शहीद हसन
सम्बलपुर	— सुरेंद्र साई
हरियाणा	— राव तुलाराम
मथुरा	— देवी सिंह
मेरठ	— कदम सिंह
सागर	— शेख रमाजान
गढ़मंडला	— शंकरशाह एवं राजा ठाकुर प्रयाग
रायपुर	— नारायण सिंह
मंदसौर	— शाहजादा हुमायूं (फिरोजशाह)
अंग्रेज जनरल	
दिल्ली	— लेफ्टिनेंट विलोबी, जॉन निकोलसन, हडसन।
कानपुर	— सर ह्यू व्हीलर, कोलिन कैम्पबेल।
लखनऊ	— हेनरी लारेंस, ब्रेगेडियर इंग्लिश, हैवलॉक, जेम्स आउट्रम, सर कोलिन कैम्पबेल।
झांसी	— सर ह्यू रोज।
बनारस	— कर्नल जेम्स नील।

- **असफलता के कारण**
  सीमित क्षेत्र एवं सीमित जनाधार।
  भारतीय रजवाड़े एवं कुछ अन्य वर्गों का अंग्रेजों को महत्वपूर्ण [illegible]
  अंग्रेजों की तुलना में विद्रोहियों के अत्यल्प संसाधन।
  योग्य नेतृत्व एवं सामंजस्य का अभाव।
  एकीकृत विचारधारा एवं राजनीतिक चेतना की कमी।
- **प्रकृति**
  1857 का विप्लव यद्यपि सफल नहीं हो सका किंतु उसने [illegible] राष्ट्रीयता की भावना के बीज बोये एवं इस क्रांति के दूरगामी [illegible] हुये।
- **प्रभाव**
  ताज के अधीन प्रशासन, कम्पनी शासन का उन्मूलन, ब्रिटिश [illegible] की नयी भारतीय नीति, सेना का पुर्नगठन, जातीय भेदभाव में [illegible]

पुनरीक्षण अभ्यास

प्रश्न	उत्तर
1. 1857 के विद्रोह का मुख्य प्रभाव-क्षेत्र कौन-सा था?	1. उत्तर व मध्य भारत
2. यह घोषणा कब हुई कि बहादुरशाह के उत्तराधिकारी को लालकिला छोड़कर कुतबमीनार के पास एक छोटे भवन में रहना होगा?	2. 1849
3. किस वर्ष भारतीय सैनिकों के लिए समुद्र-यात्रा अनिवार्य कर दी गई?	3. 1856
4. किस क्षेत्र की सेवा 1857 से पहले सैनिकों के लिए विदेश-सेवा समझी जाती थी?	4. सिन्ध पंजाब
5. 1857 के विद्रोह के किस नेता का नाम ढोंडू पन्त था?	5. नाना साहब
6. विद्रोह के दौरान दिल्ली में बनी प्रशासनिक समिति में कितने सदस्य थे?	6. 10
7. भारत में क्राउन के शासन की घोषणा कैनिंग ने नवम्बर, 1858 को कहाँ के दरबार में की?	7. इलाहाबाद
8. 19वीं शताब्दी में चेरो-विद्रोह कहाँ हुआ था?	8. बिहार
9. किस विद्रोह में बाउल-सम्प्रदाय के अनुयायियों ने नेतृत्व प्रदान किया था?	9. पागलपंथी
10. नायक-विद्रोह कहाँ हुआ था?	10. बंगाल
11. किस विद्रोह के नेता ने फ्राँस और अमरीका से सहायता प्राप्त करने की कोशिश की?	11. त्रावणकोर-विद्रोह
12. मेरठ-हत्याकाण्ड में अंग्रेजी कमान का प्रधान कौन था?	12. जनरल हेविट
13. बहादुरशाह-II को किसने गिरफ्तार किया था?	13. हडसन
14. किस क्षेत्र के अधिग्रहण के मामले में डलहौजी को कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने हटाया था?	14. करौली
15. 1857 के बाद भारत की वित्तीय-प्रणाली पर किसका अधिकार था?	15. भारत-सचिव
16. बर्दवान नहर-टैक्स विरोधी आन्दोलन से सम्बद्ध हैं?	16. बंकिम मुखर्जी
17. अवध रियासत का विलय अंग्रेजी कम्पनी में किस आधार पर किया गया?	17. कुप्रशासन

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

1857 में बैरकपुर छावनी में यूरोपीय अधिकारी की हत्या किस दिन की?
... ने ... नेता कौन था, जिसने ब्रिटिश शासन को चुनौती दी?
... भारत ... प्रगति कब दी गयी थी?
... भारत के किस राजा ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह नहीं किया था?
... के विद्रोह को 'भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' किस इतिहासकार ने कहा है?
1857 के विद्रोह को 'सामान्य जनता का विद्रोह' किस इतिहासकार ने कहा है?
1857 के विद्रोही मूलतः क्या थे?
... जनजाति कहाँ की जनजाति थी?
... जनजाति ने किसको गोली मारी थी?
... पन्थ ने किसको कूका आन्दोलन को किसने आरम्भ किया था?
1940 के करीब

18. मेरठ
19. 29 मार्च, 1857 को
20. अजीमुल्ला
21. 1813 में
22. ट्रावनकोर का राजा
23. वी.डी. सावरकर
24. प्रो शशिभूषण चौधरी
25. किसान
26. मिदनापुर
27. बाग
28. गुरु रामसिंह

2. धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आंदोलन

चेतना की उत्पत्ति व प्रसार

19वीं शताब्दी में यूरोप में एक नवीन बौद्धिक लहर चली, जिसके ...स्वरूप जागृति के एक नये युग का सूत्रपात हुआ। तर्कवाद तथा अन्वेषणा ...वना ने यूरोपीय समाज को प्रगति प्रदान की। भारत का एक नवीन ...शिक्षित वर्ग भी तर्कवाद, विज्ञानवाद तथा मानववाद से प्रभावित ...बिना नहीं रह सका। इन पाश्चात्य शिक्षित भारतीयों ने इस नवज्ञान ...प्रभावित होकर सामाजिक एवं धार्मिक सुधार का कार्य प्रारंभ किया। ...द व नवचेतना के इस आधार पर परिवर्तन की जो प्रक्रिया प्रारंभ हुयी ...पुनर्जागरण' (Renaissance) की संज्ञा दी गयी। पुनर्जागरण की ...में पुरातन मान्यताओं एवं विश्वासों पर प्रहार किये गये तथा विभिन्न ...विधियों का परित्याग कर नवज्ञान एवं नयी मान्यताओं को अपनाने पर ...दिया गया।

भारत की भूमि पर उपनिवेशी शासन के प्रभाव ने आधुनिक भारतीय इतिहास के अत्यंत संवेदनशील चरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ब्रिटिश शासन के तले भारतीय समाज एवं संस्कृति में व्यापक परिवर्तन आया तथा ...ने अपनी परंपरागत छवि से दूर हो गया। अंग्रेजों से पूर्व जितने भी बाह्य आक्रमणकारी भारत आये या तो वे भारतीय समाज एवं संस्कृति में कोई ...स्थायी प्रभाव नहीं डाल सके या फिर यहीं की सभ्यता एवं संस्कृति में ...लित हो गये। किंतु अंग्रेजों का भारत में आगमन ऐसे समय में हुआ जब ...में आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति की बयार बह रही थी एवं मानवतावाद, ...विज्ञान एवं वैज्ञानिक अन्वेषण अपनी महत्ता स्थापित करते जा रहे

...वीं शताब्दी में भारतीय समाज धार्मिक अंधविश्वासों एवं सामाजिक ...जकड़ा हुआ था। हिन्दू समाज बुराइयों, बर्बरता एवं अंधविश्वासों ...था। पुरोहित, समाज में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुये थे ...न्य पर विभिन्न कर्मकांडों तथा निरर्थक धार्मिक कृत्यों की ...स्व स्थापित कर चुके थे। उन्होंने शिक्षा, ज्ञान एवं धार्मिक ...अपना विशेषाधिकार बताया तथा इनकी सहायता से ...मस्तिष्क पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा की। ...माजिक व्यवस्था भी इतनी ही दयनीय थी। समाज में सबसे ...की थी। लड़की का जन्म अपशकुन, उसका विवाह बोझ ...hood) श्राप समझा जाता था। जन्म के पश्चात ...कर दी जाती थी। स्त्रियों का वैवाहिक जीवन अत्यंत ...था। यदि किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाती थी ...की चिता में जलने को बाध्य किया जाता था। इसे ...ना जाता था। राजा राममोहन राय ने इसे 'शास्त्र ...ा दी। सौभाग्यवश यदि कोई स्त्री इस क्रूर प्रथा से बच जाती थी तो उसे शेष जीवन अपमान, तिरष्कार, उत्पीडन एवं दुख में बिताने पर बाध्य होना पडता था।

जाति प्रथा भी समाज की एक महत्वपूर्ण बुराई थी। वर्ण या जाति का निर्धारण वैदिक कर्मकाण्डों के आधार पर होता था। इस जाति व्यवस्था की सबसे निचली सीढी पर अनुसूचित जाति के लोग थे, जिन्हें समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था तथा अछूत माना जाता था। इन अछूतों या अश्पृश्यों, की संख्या पूरी हिन्दू जनसंख्या का 20 प्रतिशत से भी अधिक थी। अश्पृश्य, भेदभाव एवं अनेक प्रतिबंधों के शिकार थे। इस व्यवस्था ने समाज को कई वर्गों या समूहों में विभक्त कर दिया। आगे चलकर यह व्यवस्था राष्ट्रीय एकीकरण एवं विकास में महत्वपूर्ण बाधा सिद्ध हुयी। वर्ग चेतना ने धीरे-धीरे अन्य संप्रदाय के लोगों को हिन्दुओं से पृथक करना प्रारंभ कर दिया। कालांतर में हिन्दू समाज की इस जाति व्यवस्था ने कई अन्य क्षेत्रों में विसंगतियां एवं कठिनाइयां पैदा कीं। अश्पृश्यता की कुरीति ने इस वर्ग के लोगों को समाज से लगभग पृथक कर दिया। मानव सभ्यता एवं प्रतिष्ठा पर यह कुरीति एक शर्मनाक धब्बा था।

भारत में उपनिवेशी शासन की स्थापना के पश्चात देश में अंग्रेजी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रसार हेतु सुनियोजित प्रयास किये गये। शहरीकरण तथा आधुनिकीकरण ने भी लोगों के विचारों को प्रभावित किया। इन नवीन विचारों के विक्षोभ ने भारतीय संस्कृति में प्रसार की भावना उत्पन्न की तथा ज्ञान का प्रसार हुआ।

आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति एवं विदेशी शक्तियों को पराजित करने की चेतना ने जागृति की नयी किरण फैलायी। धीरे-धीरे यह चेतना जागृत होने लगी कि भारतीय सामाजिक संरचना एवं संस्कृति में दुर्बलता के कारण भारत जैसा विशाल देश मुट्ठीभर विदेशियों के हाथों में चला गया है। यह भी महसूस किया जाने लगा कि भारत सभ्यता की दौड़ में काफी पिछड़ गया है। इस सोच ने एक प्रतिक्रियावादी स्वरूप को जन्म दिया। इसी समय कुछ पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त बंगाली नवयुवकों ने इस सोच से अभिप्रेरित होकर की भारत सभ्यता एवं विकास में काफी पीछे टूटता जा रहा है, प्राचीन मान्यताओं एवं मूल्यों पर कुठाराघात किया तथा मांस एवं शराब के सेवन जैसे खान-पान के पाश्चात्य तरीकों को अपना लिया। इससे यह अवश परिलक्षित होने लगा कि शायद भारतीय समाज अब सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन के दौर से गुजरने वाला है।

19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में लोकतंत्र एवं राष्ट्रवाद के उ ने भारतीयों एवं भारत की सामाजिक-धार्मिक संस्थाओं को भी प्रभावित व प्रारंभ कर दिया। इन कारकों ने शीघ्र ही पुनर्जागरण की प्रक्रिया के उ एवं विकास के लिये पृष्ठभूमि तैयार की। विभिन्न कारक यथा-राष भावनाओं के विकास, नयी आर्थिक शक्तियों के अभ्युदय, शिक्षा के आधुनिक पाश्चात्य मूल्यों एवं संस्कृति के प्रभाव तथा विश्व समुद

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन एवं उसके नेता

राजा राममोहन राय एवं ब्रह्म समाज

राजा राममोहन राय को सत्य ही आधुनिक भारत का जनक कहा गया है। बंगाल के एक छोटे गाँव राधानगर में 1774 में राजा राममोहन राय का जन्म हुआ। उन्होंने कई भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया और अपने समय के एक प्रकाण्ड पंडित के रूप में प्रसिद्ध हुए। उनकी प्रथम दार्शनिक कृति तुहफ़त-उल-मुवाहिदीन 1905 में प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने विश्व के मुख्य धर्मों का विश्लेषण किया। 1814 में कलकत्ता में बस जाने के बाद राममोहन राय की सुधार-सक्रियता और तेज हुई। उन्होंने आत्मीय सभा का गठन किया और धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध सतत संघर्ष चलाया।

राम मोहन राय अपने समूचे सक्रियता-काल में 'हेतुवादी' बने रहे। तुहफ़त में उनके 'हेतुवाद' का पूर्ण परिपाक देखा जा सकता है। 1828 में उन्होंने एक नये समाज ब्रह्म सभा की स्थापना की जो बाद में ब्रह्म समाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनका प्राथमिक उद्देश्य था हिंदुत्व को उसकी बुराइयों से अलग करना और एकांतवाद का प्रचार-प्रसार। इसमें अन्य धर्मों की श्रेष्ठ शिक्षाएं भी समाहित की गईं। यह मानवतावाद, एकांतवाद और सामाजिक पुनर्सृजन के पोषण के लिए शक्तिशाली मंच बना। अपने सहयोगी 'डेविड हेअर' की सहायता से उन्होंने 1817 के जूरी एक्ट के विरोध में याचिकाएं दायर कर भारतीयों की राजनीतिक जारूकता के अध्याय की शुरुआत की। उन्होंने भूमिकर कम करने की मांग भी रखी थी।

उनके सामाजिक विचार: वर्तमान सामाजिक पतनशीलता को लेकर राममोहन अत्यंत दुखी थे। समाज में महिलाओं की दारुण दशा विशेष रूप से उनके सरोकार का विषय बनी। उन्होंने सती-प्रथा के विरुद्ध व्यापक अभियान चलाया। उनके सतत् प्रयासों का ही परिणाम था कि गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने 4 दिसंबर, 1829 को अधिनियम XVII पारित करके सती कर्म को गैर-कानूनी तथा फौजदारी अपराध की कोटि में रखते हुए दण्डनीय घोषित कर दिया। इस अधिनियम से सामाजिक विधान के द्वारा समाज सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। उन्होंने बालविवाह एवं बहुविवाह की भर्त्सना भी की और समाज में महिलाओं के उत्पीड़न एवं निम्नस्तर का विरोध किया। उन्होंने उनकी समस्याओं का मूल कारण सम्पत्ति अधिकारों का अभाव बताया। उनके विचार से भारतीय समाज को सामाजिक जड़ता से मुक्त करने के लिए महिला शिक्षण एक अन्य प्रभारी माध्यम था।

धार्मिक विचार: राजा राममोहन राय धर्म के प्रति बौद्धिक दृष्टिकोण अपनाने के पक्षधर थे। उन्होंने विभिन्न धर्मों के दर्शन जैसे हिंदू, इस्लाम, ईसाई, सूफी आदि का भी अध्ययन किया। वह ईश्वर की एकता में विश्वास करते थे और मूर्ति-पूजा कर्मकाण्ड और अंधविश्वास के विरुद्ध थे। 1828 में उन्होंने ब्रह्म-सभा की स्थापना की, जो बाद में ब्रह्म समाज के रूप में विकसित हुआ।

ब्रह्म-समाज ने भारतीय समाज को सभी क्षेत्रों में नवीन जीवन प्रदान किया। वेदों और उपनिषदों के आधार पर उन्होंने यह समझाया कि ईश्वर एक है, प्रत्येक धर्म में सत्य है, मूर्ति-पूजा और कर्मकाण्ड बेकार हैं और अनेक कुरीतियों का धर्म से कोई सम्बंध नहीं है। ब्रह्म समाज का विश्वास है कि कुछ भी दृश्यमान-जगत में अस्तित्ववान है, उस सबका कारण और स्रोत ईश्वर है।

राजनीतिक विचार: राजा राममोहन राय भारत में ब्रिटिश शासन के प्रति उन्होंने सामाजिक सुधार के प्रगतिशील उपायों का शुभारंभ करने तथा आधुनिक शैक्षिक प्रगति को प्रोत्साहन दिया। उन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता की प्रशंसा की। लेकिन संचालन भी किया।

शिक्षा संबंधी विचार: उन्होंने आधुनिक शिक्षा के प्रसार के लिए काम किया, जो देश में आधुनिक विचारों के प्रमुख वाहक बन सकती थी। इसके विकास के लिए उन्होंने डेविड हेयर को मिला एवं समर्थन दिया, जिसने कलकत्ता के अनेक गणमान्य व्यक्तियों को मिलकर प्रसिद्ध हिंदू कालेज की स्थापना की, जिसमें भारतीय तथा पाश्चात्य वेदांत कालेज, की स्थापना की सुविधा थी। राममोहन ने भारत में पाश्चात्य प्रकार के अध्ययनों की सुविधा थी। राममोहन ने भारत में पाश्चात्य दर्शन, रसायन, शरीर क्रिया विज्ञान और ज्ञान, गणित, प्राकृतिक विज्ञानों के शिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया। उपयोगी

प्रार्थना समाज

इसकी स्थापना महाराष्ट्र में 1867 में केशवचंद्र सेन के प्रयास से हुई थी। परंतु 'प्रार्थना समाज' ब्रह्मसमाज से एक अर्थ में भिन्न था कि इसके अनुयायी अपने को सनातन हिंदू मानते थे, जबकि ब्रह्म समाज के नहीं थे। प्रार्थना समाज ने दक्कन एजूकेशन सोसायटी जैसी शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना में भी रुचि दिखाई। 'प्रार्थना समाज' परमहंस सभा का ही रूप था, जिसकी स्थापना दादोबा पांडुरंग तारखडकर ने की थी। आत्माराम पांडुरंग, भंडारकर आदि इससे जुड़े हुए प्रमुख व्यक्ति थे।

यंग बंगाल आंदोलन एवं हेनरी विवियन डेरोजियो

यंग बंगाल नाम से विख्यात नवयुवक बंगाली बौद्धिकों की टोली नये एवं मूलगामी विषयों का प्रचार-प्रसार होने लगा। इस आंदोलन को मुख्य रूप से हिंदू कालेज के एग्लो-इंडियन शिक्षक हेनरी विवियन डेरोजियो (1809-1831) ने की थी। 22 वर्ष की अल्प आयु में ही डेरोजियो ने में नवजागरण की जो मशाल जलाई, वह अविश्वसनीय लगती है। जन्म कलकत्ता में 1809 में पुर्तगाली-भारतीय परिवार में हुआ था। विचारों से उसने कॉलेज के युवा विद्यार्थियों को बहुत आंदोलित किया। मूलगामी विचारों के कारण डेरोजियो 1831 में हिंदू कालेज से निकाल दिया गया और इसके कुछ समय बाद ही कालरा से 22 वर्ष की अल्पायु में उनका देहावसान हो गया।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर

राजा राममोहन के पश्चात् भारत में एक अन्य बड़े समाज-सुधारक ईश्वरचंद्र विद्यासागर हुए। वे संस्कृत के विद्वान थे तब भी उन्होंने पश्चिमी सभ्यता की अच्छी बातों को स्वीकार किया। 1850 में वे संस्कृत कॉलेज के प्रधानाचार्य बने। उन्होंने संस्कृत अध्ययन के लिए ब्राह्मणों के एकाधिकार को समाप्त किया तथा गैर-ब्राह्मणों को संस्कृत अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज-सुधार को मुख्यतया स्त्रियों को सुधारने के लिए लगा दिया। इन्होंने विधवा-विवाह के पक्ष में आवाज खड़ी की और इसके लिए अपने नेतृत्व में एक आंदोलन को जन्म दिया। 1855 में भारत के सभी बड़े शहरों से सरकार को विधवा-विवाह को कानूनी मान्यता देने के लिए एक प्रार्थना-पत्र भेजा। इसका परिणाम, 1856 में विधवा-विवाह कानून का स्वीकार किया। उन्होंने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देने हेतु अथक प्रयत्न किया। स्थापित बेथुन स्कूल के सचिव के रूप में उन्होंने भारत में स्त्री उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया।

ज्योतिबा फुले और सत्यशोधक समाज

ज्योतिबा फुले का जन्म 1828 में एक माली के घर शक्तिशाली गैर-ब्राह्मण आंदोलन का संचालन किया। 18 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। इस समाज का

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सार्वजनिक सेवा संघ (ii) स्त्रियों एवं निम्न जाति के लोगों के बीच शिक्षा प्रसार करना था। ज्योतिबा फुले ने 'सार्वजनिक सत्यधर्म' एवं 'गुलामी' ग्रंथ में लिखे तो वे अभावग्रस्त भारतीय किसान के वास्तविक प्रतिनिधि थे जो धोती पहने हुए उनके सम्मुख प्रस्तुत हुए। अपनी ब्राह्मण-विरोधी विचारों को संगठित रूप में प्रसार करने के लिए उन्होंने दो आलोचनात्मक पुस्तकें सार्वजनिक सत्य धर्म पुस्तक तथा *गुलामगीरी* की रचना की।

सदाशिव रामजी जाम्बेकर

एक प्रसिद्ध समाज-सुधारक थे, जिनका कार्यक्षेत्र बंबई था। इन्होंने जाति की सर्वोच्चता को चुनौती दी तथा हिंदुत्व को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया। 1832 में उन्होंने साप्ताहिक पत्र *दर्पण* का प्रकाशन प्रारंभ किया।

छात्रों की शैक्षिक एवं वैज्ञानिक समितियां

ज्ञान प्रकाश मंडलियों के नाम से भी जाना जाता है, इनकी दो शाखाएं थीं—प्रथम मराठी एवं दूसरी गुजराती। जिनका गठन 1848 में शिक्षित युवा भारतीयों द्वारा किया गया था। इन मंडलियों द्वारा सामाजिक प्रश्नों एवं लोकप्रिय विज्ञान पर व्याख्यानों का आयोजन किया जाता था। इनका प्रमुख उद्देश्य बालिकाओं को स्कूलों में प्रवेश लेने के लिए प्रोत्साहित करना था।

दयानंद सरस्वती और आर्य समाज

स्वामी दयानंद का बचपन का नाम मूलशंकर था। उनका जन्म 1824 में गुजरात के एक छोटे नगर, तनकारा में एक प्रतिक्रियावादी ब्राह्मण परिवार में हुआ। 1845 में उन्होंने अपना घर-परिवार छोड़ दिया और 1861 तक वे एक संन्यासी के रूप में सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करते रहे। 1875 में बम्बई में उन्होंने, सर्वप्रथम *आर्य-समाज* की स्थापना की। *सत्यार्थ प्रकाश* इस संस्था का पवित्र ग्रंथ है। उनके गुरू का नाम *बिरजानंद* था। 1868 में दयानंद ने अपने एकाकी सन्यास एवं अध्यात्मिक खोज का जीवन समाप्त कर दिया और सक्रिय धर्मसुधारक एवं समाजसुधारक बन गए। उन्होंने अपने विचारों के प्रचार के लिए भारत का भ्रमण किया और विभिन्न स्थानों पर आर्य समाज की स्थापना की।

दयानंद का विश्वास था कि स्वार्थी एवं अज्ञानी पुरोहितों ने पुराणों जैसे ग्रंथों के सहारे हिंदू धर्म भ्रष्ट किया है। उनके अनुसार वेद ही हिंदू धर्म का वास्तविक आधार है। हिंदू रूढ़िवादिता का विरोध करते हुए उन्होंने मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, अवतारवाद, पशुबलि, श्राद्ध तथा झूठे कर्मकांडों और अंधविश्वासों का विरोध किया।

स्वामी दयानंद ने अपने जीवन के अंतिम आठ वर्ष आर्य समाज का प्रचार करने, अपने उपदेशों को प्रसारित करने, पुस्तकें लिखने तथा भारत भर में आर्य समाज को संगठित करने में व्यतीत किए। आर्य समाज के संदेशों का प्रचार-प्रसार करने का उनका उद्देश्य पंजाब में अत्यधिक सफल रहा। दयानंद सरस्वती वेदों को "भारत के आधार-स्तम्भ" के रूप में देखते थे। उनका विश्वास था कि हिंदू धर्म और वेद, जिन पर भारत का पुरातन समाज टिका था, शाश्वत, अपरिवर्तनीय, धर्मातीत और दैवीय हैं। इसीलिए उन्होंने "वेदों की ओर वापस चलो" तथा "वेद ही समग्र ज्ञान के स्रोत हैं" का नारा दिया।

...समाज

केशवचंद्र सेन ने मद्रास यात्रा के दौरान वेद समाज की स्थापना के प्रेरणा दी। इस संगठन के संस्थापक *के. श्रीधरालु नायडू* थे। इन्होंने समाज के आंदोलन का अध्ययन करने के लिए कलकत्ता की यात्रा की। मद्रास आकर 1871 में वेद समाज को दक्षिण भारत के ब्रह्म समाज में परिवर्तित कर दिया। 1874 में एक दुर्घटना में श्री नायडू की मृत्यु के कारण इस समाज में फूट पड़ गई।

रहनुमाई मजदायन सभा

बम्बई के पारसियों की यह प्रतिनिधि संस्था थी, जिसकी स्थापना 1851 में नौरोजी फरदोनजी, दादाभाई नौरोजी तथा एम. एस. बंगाली आदि ने की थी। स्त्री-शिक्षा के प्रोत्साहन जैसे मुद्दों के अतिरिक्त पारसियों के सामाजिक विधान में एकरूपता लाना इसका प्रमुख उद्देश्य था।

बहावी आंदोलन

मुसलमानों की पाश्चात्य प्रभावों के विरुद्ध सर्वप्रथम जो प्रतिक्रिया हुयी, उसे ही बहावी आंदोलन या वलीउल्लाह आंदोलन के नाम से जाना जाता है। वास्तव मे यह एक पुनर्जागरणवादी आंदोलन था। शाह वलीउल्लाह (1702-62) अठारवीं सदी में मुसलमानों के वह प्रथम नेता थे, जिन्होंने भारतीय मुसलमानों में हुयी गिरावट में चिंता प्रकट की। उन्होंने भारतीय मुसलमानो के रीति-रिवाज तथा मान्यताओं में व्याप्त कुरीतियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

इसके पश्चात शाह अब्दुल्ला अजीज तथा सैय्यद अहमद बरेलवी (1786-1831) ने वलीउल्लाह के विचारो को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। शाह अब्दुल अजीज ने हिंदुस्तान को दारुल-हर्ब (काफिरो का देश) से दारुल-इस्लाम बनाने का आह्वान किया। प्रारंभ मे यह अभियान सिख सरकार के खिलाफ था परंतु 1849 में अंग्रेजों द्वारा पंजाब का विलय करने पर यह अंग्रेजों के विरुद्ध हो गया। यह आंदोलन 1870 तक चलता रहा जब तक कि इसे सैन्य बल द्वारा समाप्त नहीं कर दिया गया। सैय्यद अहमद का यह दल उग्र था। इसका केंद्र पटना था।

टीटू मीर का आंदोलन

वहाबी आंदोलन के संस्थापक सैय्यद अहमद बरेलवी के शिष्य, मीर निथार अली, जिन्हें टीटू मीर के नाम से भी जाना जाता था, ने इस आंदोलन का प्रवर्तन किया। टीटू मीर ने बंगाल के मुसलमान किसानों को हिन्दू जमींदारों एवं अंग्रेज नील सौदागरों के विरुद्ध संगठित किया। यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने इस आंदोलन को आतंकवादी या हिंसक नहीं माना किंतु आंदोलन के अंतिम वर्षों विशेषकर उस वर्ष जब टीटू मीर का निधन हुआ इसके कार्यकर्ताओं एवं पुलिस में अनेक झड़पें हुयीं। 1831 में इसी प्रकार की एक मुठभेंड़ में टीटू मीर का निधन हो गया।

फराजी आंदोलन

इस आंदोलन की शुरुआत हाजी शरियत-अल्लाह ने की थी। इस आंदोलन को 'फराइदी आंदोलन' के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इसका मुख्य जोर इस्लाम धर्म की सच्चाई पर था। इस आंदोलन का कार्य क्षेत्र मुख्यतयाः पूर्वी बंगाल था तथा इसका मुख्य उद्देश्य इस क्षेत्र की मुस्लिम आबादी को सामाजिक भेदभाव एवं शोषण से बचाना था। हाजी शरियत अल्लाह के पुत्र दूदू मियां के नेतृत्व में 1840 के पश्चात आंदोलन ने क्रांतिकारी रुख अख्तियार कर लिया। दूदू मियां ने आंदोलन को एक नया स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने इसे गांव से लेकर प्रांतीय स्तर तक संगठित किया। उन्होंने संगठन के प्रत्येक स्तर पर एक प्रमुख नियुक्त किया। इस आंदोलन ने सशस्त्र कार्यकर्ताओं का एक दल तैयार किया जिसका कार्य हिन्दू जमींदारों एवं पुलिस के विरुद्ध संघर्ष करना था।

दूदू मियां को अनेक बार पुलिस ने गिरफ्तार किया किंतु 1847 में दूदू मियां की लंबी गिरफ्तारी के पश्चात आंदोलन कमजोर हो गया। 1862 में दूदू मियां की मृत्यु के बाद भी आंदोलन चलता रहा किंतु किसी बड़े राजनैतिक प्रश्रय के अभाव में इसकी पहचान एक क्षेत्रीय धार्मिक आंदोलन के रूप में सिमट कर रह गयी।

अहमदिया आंदोलन

19वीं शताब्दी में मुस्लिम समाज और धर्म सुधार के लिये एक अ आंदोलन चला, जिसे अहमदिया आंदोलन कहते हैं। वर्ष 1889 में मिर्जा गुल अहमद ने इस आंदोलन की शुरुआत की। यह आंदोलन उदार सिद्धांतों

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सर सैय्यद अहमद खान एवं अलीगढ़ आंदोलन

सर सैय्यद अहमद खान का जन्म 1817 में दिल्ली में एक प्रतिष्ठित मुस्लिम परिवार में हुआ था। वे ब्रिटिश शासन के अधीन न्यायिक सेवा के एक अंग्रेज भक्त नौकरशाह थे। 1876 में सरकारी सेवा से सेवानिवृत्त होने के पश्चात 1878 में वे 'इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल' के सदस्य बने। अंग्रेजों के प्रति उनके समर्पण से प्रसन्न होकर 1888 में अंग्रेज सरकार ने उन्हें 'नाइटहुड' की उपाधि प्रदान की। उन्होंने अपील की कि कुरान की शिक्षाओं की व्याख्या पाश्चात्य वैज्ञानिक शिक्षा के दृष्टिकोण से की जाये। उन्होंने घोषित किया कि कुरान ही मुसलमानों की एकमात्र धार्मिक कृति है और सभी अन्य इस्लामिक रचनायें इसके समक्ष गौण हैं। उन्होंने कुरान की व्याख्या समसामयिक बौद्धिक तर्कों और ज्ञान के प्रकाश में की। उनके मतानुसार पवित्र कुरान की कोई भी व्याख्या जो मानवीय तर्क बुद्धि से मेल नहीं खाती वह वस्तुतः गलत व्याख्या है। उन्होंने मुसलमानों से आग्रह किया कि वे गलत-रीति रिवाजों का अनुसरण न करें। उनके अनुसार कोई भी ग्रहण करने के योग्य होना चाहिए अन्यथा यह समाप्त हो जाता है। ने धार्मिक रीति-रिवाजों का अन्ध रूप में अनुसरण करने को गलत ।

सैय्यद अहमद खान एक उत्साही शिक्षाविद थे। उन्होंने कस्बों में स्कूल था अनेक पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद किया। 1875 में अलीगढ़ में हम्मडन एंग्लो ओरिएंटल कालेज' की स्थापना की। उन्होंने स्त्रियों बढ़ाने एवं उन्हें शिक्षित करने के क्षेत्र में भी अथक परिश्रम किया। में पर्दा प्रथा तथा बहुपत्नी प्रथा के घोर विरोधी थे। उन्होंने यों की भी सहमति लेने की मांग की तथा 'पीरी' एवं 'मुरीदी' ड़े शब्दों में निंदा की। वे हिन्दू एवं मुसलमान दोनों धर्मों में क थे। उन्होंने कहा हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही एक देश ट्र हैं। देश की प्रगति और भलाई हमारी एकता और प्रेम

दिया कि मुसलमानों को सर्वप्रथम शिक्षा प्राप्त कर चाहिए, जिससे वे हिन्दुओं की बराबरी कर सकें जो विभिन्न अवसरों का लाभ उठा रहे हैं। एक सक्रिय का विश्वास था कि मुसलमानों को अंग्रेजों से अपने ी उनके हितों की पूर्ति हो सकती है। इसीलिये

उन्होंने मुसलमानों को ऐसा उपदेश दिया कि वे अंग्रेजों के विरुद्ध हों। दुर्भाग्यवश मुसलमानों ने अंग्रेजों के युद्ध को लेकर वे अंग्रेजी शासन के प्रति विद्रोह रोजगार के अवसरों की खोज जारी एवं राज काजी जैसी नीति को अपना उन्होंने अंग्रेजों की खुल जाने से उन्होंने साम्प्रदायिक रूख ले लिया। बाद के वर्षों में तो उनके साम्प्रदायिक रूख में परिवर्तन आ गया। कभी हिन्दुओं और मुसलमानों को भारत अवसरों की राह देखे वाले सर सैय्यद अहमद खान हिन्दुओं के हो गये तथा उन्होंने हिन्दुओं की निंदा प्रारंभ कर दी। उन्होंने कहा कि हिन्दुओं के अधीन मुसलमानों का उत्थान कभी नहीं हो सकता। उन्होंने अपने विचारों का प्रचार तहजीब-उल-अखलाक के माध्यम से किया।

अलीगढ़-आंदोलन ने शिक्षित मुसलमानों के बीच उदार शिक्षा पद्धति का विकास किया, जो कि मोहम्डन एंग्लो-ओरिएंटल कालेज की स्थापना पर आधारित था। इसके मुख्य उद्देश्यों में– (i) इस्लाम के प्रति भारतीय मुसलमानों के बीच आधुनिक शिक्षा का प्रसार करना, (ii) मुस्लिम समाज के विभिन्न क्षेत्रों जैसे-पर्दा प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, तलाक इत्यादि के क्षेत्र में सुधार लाना, (iii) स्त्री शिक्षा, दास प्रथा, तलाक इत्यादि के क्षेत्र में सुधार लाना था।

इस आंदोलन के समर्थकों की विचारधारा कुरान की उदारवादी व्याख्या पर आधारित थी। इन्होंने मुस्लिम समाज में आधुनिक एवं उदारवादी विचारों को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया। वे आधुनिक पथ पर चलकर मुस्लिम समाज का आधुनिकीकरण करना चाहते थे। इस प्रकार अलीगढ़ आंदोलन ने तत्कालीन समय में मुस्लिम सांस्कृतिक एवं धार्मिक गतिविधियों को प्रभावित किया गया।

देवबंद स्कूल

यह भी एक प्रकार का मुस्लिम धार्मिक आंदोलन था जिसे मुस्लिम धर्म के रूढ़िवादी उलेमाओं द्वारा प्रारंभ किया था। इस आंदोलन के मुख्य उद्देश्य थे-(i) कुरान एवं हदीस की शिक्षाओं का मुसलमानों के बीच प्रचार-प्रसार करना एवं (ii) विदेशी आक्रांताओं एवं गैर-मुसलमानों के विरुद्ध धार्मिक युद्ध 'जेहाद' को प्रारंभ रखना।

देवबंद स्कूल की स्थापना, तत्कालीन संयुक्त प्रांत के सहारनपुर जिले में देवबंद नामक स्थान में 1866 में मोहम्मद कासिम नानोतवी (1832-80) एवं राशिद अहमद गंगोही (1828-1905) ने संयुक्त रूप से की थी। ये दोनों मुस्लिम समुदाय के धार्मिक नेता थे। यह आंदोलन, अलीगढ़ आंदोलन के विरुद्ध था। इसने अलीगढ़ आंदोलन द्वारा मुस्लिम समाज का पाश्चात्यीकरण करने एवं उदार रुख अपनाने के रवैये का कड़ा विरोध किया तथा मुस्लिम समुदाय का नैतिक एवं धार्मिक उत्थान करने की वकालत की। इसने अलीगढ़ आंदोलन के अनुयायियों द्वारा अंग्रेज सरकार का समर्थन करने के कार्य की भी निंदा की।

राजनीतिक मोर्चे पर देवबंद स्कूल ने 1888 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन का स्वागत किया तथा सर सैय्यद अहमद खान के संगठन, संयुक्त राष्ट्रवादी संघ एवं मोहम्मडन एंग्लो ओरिएंटल एसोसिएशन के खिलाफ फतवा जारी किया। यह आंदोलन सर सैय्यद अहमद खान द्वारा मुस्लिम समाज सुधार हेतु किये जा रहे कार्यों का कड़ा विरोधी था तथा इसने सैय्यद अहमद के प्रयासों को मुस्लिम समाज के लिये आत्मघाती बताया।

मुहम्मद-उल-हसन ने अपने नेतृत्व में देवबंद स्कूल के धार्मिक विचारों को नया राजनीतिक एवं बौद्धिक स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने इस्लामिक सिद्धांतों एवं राष्ट्रवादी प्रेरणा के समन्वय हेतु सराहनीय प्रयास किये। बाद में जमात-उल-उलेमा ने हसन के विचारों को नये स्वरूप में ढाला, जिससे कि राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रवादी उद्देश्यों को क्षति पहुंचाये बिना मुसलमानों के धार्मिक एवं राजनीतिक हितों की रक्षा हो सके।

देवबंद स्कूल के एक अन्य समर्थक शिबली नुमानी का मत था कि शिक्षा की पद्धति में अंग्रेजी एवं यूरोपीय विज्ञान का भी सम्मिलन किया जाये। उन्होंने 1894-96 में लखनऊ में नदवातुल उलम एवं दारुल उलम की

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...थी। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आदर्शों में विश्वास करते थे तथा ...हिन्दू मुस्लिम एकता के समर्थक थे। उनका मत था कि दोनों धर्मों में ...ही राष्ट्र में दोनों समुदाय के लोग आपसी सद्भाव से रह सकते ...बना कर सकते हैं।

...सुधार आंदोलन

...शिक्षा प्राप्त पारसियों के एक समुदाय ने 1851 में 'रहनुमाई ...सभा' गठित की। इसका उद्देश्य पारसी समाज का ...सभा को पुनर्स्थापित करना था। ...पारसी धर्म की प्राचीन सभ्यता को पुनर्स्थापित करना था। ...के नेताओं में नौरोजी फरदोनजी, दादाभाई नौरोजी, के.आर. ...प्रमुख थे। इस सभा के संदेशों को पारसियों तक ...एक पत्रिका 'रास्त गोफ्तार' प्रारंभ की गई। पारसी धर्म की ...के लिये एक पत्रिका 'रास्त गोफ्तार' प्रारंभ की गई। पारसी धर्म की ...रीति रिवाजों में इस सभा ने अनेक परिवर्तन एवं सुधार किये। ...महिलाओं की स्थिति सुधारने का भी प्रयास किया तथा विभिन्न ...पर्दा प्रथा इत्यादि का विरोध किया। सभा, स्त्रियों के विवाह ...तथा स्त्रियों ने शिक्षा को बढ़ावा देने की पक्षधर थी। कुछ ...में पारसी एक नये पाश्चात्य सभ्यता से ...भारतीय समाज के रूप में सामने आये।

...सुधार आंदोलन

...शताब्दी में भारत में चल रहे विभिन्न धर्म एवं समाज सुधार ...समुदाय भी अछूता न रहा सका तथा इसमें भी विभिन्न ...से सिख धर्म सुधार आंदोलन प्रारंभ हुये। 1873 में अमृतसर में सिंह सभा ...धर्म सुधार आंदोलन प्रारंभ हुआ। इसके दो मुख्य दो उद्देश्य थे- (i) सिखों के लिये ...पाश्चात्य शिक्षा की उपलब्धता सुनिश्चित करना तथा (ii) सिख ...हितों को नुकसान पहुंचाने वाली ईसाई मिशनरियों एवं हिन्दू ...के विरुद्ध संघर्ष करना। अपने प्रथम उद्देश्य की पूर्ति के लिये ...पंजाब में खालसा स्कूलों की स्थापना की। लेकिन सिंह सभा ...में गतिशीलता तब आयी जब अकाली आंदोलन प्रारंभ हुआ। ...आंदोलन, सिंह सभा की ही शाखा थी। अकालियों का मुख्य उद्देश्य ...का प्रबंध सुधारना था। वे गुरुद्वारों को उन भ्रष्ट उदासी महन्तो ...कराना चाहते थे, जो सरकारी-संरक्षण की आड़ में विभिन्न प्रकार ...कार्यों में लिप्त थे। 1921 में अकालियों ने एक नया असहयोग एवं ...आंदोलन प्रारंभ किया। लेकिन अकालियों को प्रमुख सफलता तब ...जब 1922 में (1925 में संशोधित) बहुप्रतीक्षित एवं लोकप्रिय 'सिख ...एक्ट' पास हुआ। इस एक्ट द्वारा गुरुद्वारों का प्रबंध सिखों की शीर्ष ...शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी' को सौंप दिया गया।

अकाली आंदोलन एक क्षेत्रीय आंदोलन था लेकिन यह साम्प्रदायिक ...नहीं था। कालांतर में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भी समय-समय पर ...नेताओं ने ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध आवाज उठायी तथा राष्ट्रीय ...संघर्ष में सराहनीय भूमिका अदा की।

थियोसोफिकल आंदोलन

इस आंदोलन की शुरुआत दो पाश्चात्य बुद्धिजीवियों मैडम एच.पी. ब्लावेटस्की (1831.1891) एवं कर्नल एम.एस. अलकाट ने की। ये दोनों भारतीय विचारों एवं भारतीय संस्कृति से गहरे प्रभावित थे। 1875 में अमेरिका में इन्होंने 'थियोसोफिकल सोसायटी' की स्थापना की। किंतु 1882 में इन्होंने सोसायटी का मुख्यालय मद्रास के निकट अडयार नामक स्थान में परिवर्तित कर दिया। इसके अनुयायी ईश्वरीय ज्ञान को आत्मिक हर्षोन्माद एवं अतर्दृष्टि द्वारा प्राप्त करने की कोशिश करते थे। उनका मानना था कि ध्यान, योग एवं चिंतन जैसे माध्यमों द्वारा व्यक्ति की आत्मा को परमात्मा से जोड़ा जा सकता है। वे हिन्दू धर्म के पुर्नजन्म एवं कर्म के सिद्धांत पर भी विश्वास करते थे। उन्होंने उपनिषद, सांख्य, योग एवं वेदांत के विचारों को अति महत्वपूर्ण बताया। सोसायटी का उद्देश्य प्रजाति, नस्ल, लिंग, जाति एवं रंग में भेदभाव किये बिना सभी लोगों के कल्याण के लिये प्रयत्न करना था। इसने प्रकृति एवं मानव शक्ति के अनसुलझे रहस्यों की भी व्याख्या करने का प्रयास किया। सोसायटी ने मुख्यता हिन्दू धर्म की प्राचीन विरासत एवं पहचान को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया।

1907 में कर्नल अलकाट की मृत्यु के पश्चात एनी बेसंट (1847-1933) इसकी अध्यक्ष चुनी गयीं। एनी बेसंट की अध्यक्षता में सोसायटी की लोकप्रियता में और ज्यादा वृद्धि हुयी। एनी बेसंट 1893 में भारत आयी। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एनी बेसंट ने बनारस में 'सेंट्रल हिन्दू स्कूल' की आधारशिला रखी और उसकी प्रगति के लिये भरसक प्रयत्न किया। इस स्कूल में हिन्दू धर्म एवं पाश्चात्य वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। यही स्कूल आगे चलकर कालेज और अंततः 1915 में 'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय' में परणित हो गया। एनी बेसंट ने स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किया।

थियोसोफिकल सोसायटी ने विभिन्न धर्मों को मजबूत करने की वकालत की तथा शिक्षित हिन्दुओं को हिन्दू धर्म की प्राचीन समृद्ध विरासत से अवगत कराया। किंतु अपने अर्थपूर्ण उद्देश्यों एवं सराहनीय प्रयत्नों के पश्चात भी थियोसोफिकल सोसायटी किसी ऐसे कार्यक्रम या आंदोलन को जन्म देने में असफल रही, जिसके की हिन्दू धर्म या समाज में दूरगामी प्रभाव हों। यह किसी बड़े परिवर्तन को अंजाम देने में भी असफल रही। सोसायटी के अनुयायी भी पाश्चात्य वर्ग के रूप में समाज का छोटा हिस्सा ही थे। धार्मिक परिवर्तनवादी के रूप में भी थियोसोफिकल समर्थकों को ज्यादा सफलता हाथ नहीं लगी। लेकिन हिन्दू धर्म की समृद्ध विरासत से लोगों को अवगत कराकर तथा प्राचीन धर्म, दर्शन और विज्ञान की महत्ता प्रतिपादित कर सोसायटी ने लोगों के मन में राष्ट्रवाद की प्रेरणा जागृत की। इस प्रेरणा ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आंदोलन करने की चेतना भारतीयों में जागृत की। दूसरे दृष्टिकोण से यह भी माना जाता है कि थियोसोफिकल सोसायटी ने भारतीयों को उनकी परंपरागत रीतिरिवाजों एवं दर्शन में बांधे रखा तथा उनकी समृद्धता का गुणगान करके उनमें मिथ्या गर्व का भाव भर दिया।

पुनरीक्षण अभ्यास

प्रश्न	उत्तर
1. भारत में सामाजिक और आर्थिक सुधार की प्रक्रिया का सूत्रपात किस काल में किया गया?	1. 19वीं शताब्दी (उपनिवेशी शासनकाल)
2. सती प्रथा को किसने और कब गैरकानूनी घोषित किया?	2. लॉर्ड विलियम बैंटिंक, 4 दिसंम्बर, 182
3. राजाराम मोहनराय ने ब्रह्म समाज की स्थापना 1828 में की थी। ब्रह्म समाज की स्थापना का उनका उद्देश्य क्या था?	3. मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड और अंधविश्वास व उन्मूलन
कलकत्ता में 'हिन्दू कॉलेज' और 'वेदांत कॉलेज' की स्थापना किसके द्वारा की गई थी?	4. राजाराम मोहन राय
प्रार्थना समाज' की स्थापना किनके प्रयासों द्वारा की गई थी?	5. केशवचन्द्र सेन
र्थना समाज' किस धार्मिक सभा का पुनर्गठित रूप था, जिसकी स्थापना पांडुरंग तारखडर की थी?	6. परमहंस सभा
ोप्रथा' का अंत किनके अथक प्रयासों के उपरांत संभव हो पाया?	7. राजाराम मोहन राय

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

6. पग बगाल आंदोलन की पहल मुख्य रूप से किसके द्वारा की गई थी?
7. थियो विद्वान के पास में किसके नेतृत्व में आंदोलन किया गया? उन्होंने ब्राह्मणों की सर्वोच्चता
10. एक प्रसिद्ध समाज सुधारक थे जिन्होंने अपने को बहुई था। उन्होंने ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को चुनौती दी तथा हिंदुत्व को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया। उनका नाम क्या था?
11. वेद समाज की स्थापना किसके द्वारा और कब की गई थी?
12. किस मुस्लिम सुधारक ने हिन्दुस्तान को दारुल-इस्लाम बनाने का आह्वान किया?
13. वहाबी आंदोलन का सर्वप्रथम नेतृत्व किसने किया था?
14. सत्यशोधक समाज की स्थापना किसने और कब की थी?
15. गुलामगीरी नामक पुस्तक की रचना किसने की थी?
16. आर्य समाज की स्थापना कहाँ और कब की गई थी?
17. दयानन्द सरस्वती के गुरु का नाम क्या था?
18. फराजी आंदोलन का नेतृत्व किसने किया था और इसका मुख्य कार्यक्षेत्र किस स्थान पर था?
19. मुस्लिम समाज में सुधार लाने एवं उसमें व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए किस मुस्लिम आंदोलन द्वारा प्रयास किया गया?
20. किस मुस्लिम समाज सुधारक को अंग्रेजों ने 'नाइटहुड' की उपाधि प्रदान की थी?
21. देवबंद स्कूल किस प्रकार का आंदोलन था—धार्मिक या सामाजिक? इसका नेतृत्व किसने किया था?
22. सिंह सभा आंदोलन का प्रारंभ कब और कहां से हुआ?
23. थियोसोफिकल आंदोलन को किन पाश्चात्य बुद्धिजीवियों द्वारा प्रारंभ किया गया?
24. 'रहनुमाई माजदायास्नान सभा' की स्थापना किस साम्प्रदाय में सुधार लाने के लिए किया गया था?
25. आर्य समाज के पवित्र ग्रंथ का नाम क्या है?

8. हेनरी विवियन डेरोजियो
9. ईश्वर चंद्र विद्यासागर
10. बालशास्त्री जाम्बेकर
11. के. श्रीधरालु नायडू, 1871
12. शाह अब्दुला अजीज
13. शाह वलीउल्लाह
14. ज्योतिबा फुले, 1873
15. ज्योतिबा फुले
16. बम्बई, 1875
17. विरजानंद
18. हाजी शरियत-अल्लाह, पूर्वी बंगाल
19. अहमदिया आंदोलन
20. सर सैय्यद अहमद खान
21. धार्मिक, मुहम्मद-उल-हसन
22. 1873, अमृतसर
23. मैडम एच.पी. ब्लावैटस्की एवं कर्नल एम.एस. अलकाट
24. पारसी
25. 'सत्यार्थ प्रकाश'

3. राष्ट्रवाद का उदय

1857 की क्रांति के बाद भारत में राष्ट्रवाद की लहर तेज होने लगी। इसे जागृत करने में सामाजिक व धार्मिक सुधार आंदोलनों, अंग्रेजी शिक्षा, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन, रेलवे के विकास, प्रेस के विकास, राष्ट्रवादी संगठनों एवं इलबर्ट विधेयक ने प्रमुख भूमिका निभायी। भारतीय इतिहास पर सूक्ष्मता से दृष्टि डाली जाए, तो ज्ञात होता है कि 7वीं सदी में हर्ष के साम्राज्य के पतन के बाद से भारतीयों की राजनीतिक चेतना सुसुप्तावस्था में चली गयी थी--क्षेत्रीय स्तर पर कहीं-कहीं भारतीयों के हाथ में शासन था भी तो राष्ट्रीयता की भावना का सर्वथा अभाव था। वस्तुतः, 19वीं शताब्दी के पूर्व भारत के जनसाधारण के बीच राजनीतिक चेतना का उदय नहीं हो पाया था। अपनी स्थितियों एवं शिकायतों को प्रभावी ढंग से व्यक्त करने के लिए भारतीयों द्वारा किसी संस्था अथवा मंच का गठन भी नहीं किया गया। मूलतः, जनसाधारण के जीवन में राजनीति के प्रति उदासीनता-सी छा गयी थी। राष्ट्रीयता की भावना जागृत नहीं होने के कारण पराधीनता की बेड़ियों से बाहर निकलने का मार्ग भी उन्हें नहीं सूझ रहा था।

यह सच है कि उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में राष्ट्रवाद मुख्य रूप में प्रकट हुआ, परन्तु यह भी सच है कि लोगों में इसके पूर्व भी शासन-व्यवस्था के प्रति असंतोष था और वे शोषण तथा अत्याचार से अत्यन्त दुःखी थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि राष्ट्रीय स्तर पर एकजुट होकर न सही, स्थानीय स्तर पर शोषण और अत्याचार के विरूद्ध अनेक छोटे-मोटे आंदोलन भारतीयों द्वारा किए जा चुके थे। किसानों, आदिवासियों, मिल-मजदूरों, सैनिकों आदि की ओर से तो अनेक विद्रोह भी हो चुके थे। किन्तु, राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने के लिए जिस संगठन की आवश्यकता थी, उस ओर भारतीयों का ध्यान नहीं गया। भारत के लोग एक-दूसरे के सम्पर्क में नहीं रहे, उन्हें बाहर की सूचनाएं प्राप्त नहीं हुईं, जिससे वे संकीर्णता के शिकार होते गए। भारतीयों की इस संकीर्ण मानसिकता का लाभ उठाकर अंग्रेज अपनी शक्ति का विस्तार करते गए।

राष्ट्रवाद के प्रेरक तत्त्व

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में राष्ट्रवाद का स्वर मुखर हुआ। इस राष्ट्रवाद को मुखर करने में अनेक तत्त्वों ने भूमिका निभायी। इन तत्त्वों में प्रमुख थे--

सामाजिक व धार्मिक सुधार आंदोलन

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल में अंग्रेजों के आगमन तक भारतीय समाज एवं धर्म अनेक प्रकार की रूढ़ियों एवं कुरीतियों से ग्रस्त था। उनकी चेतना मृतप्राय हो चुकी थी। विश्व समुदाय नए-नए विचारों के साथ प्रगति के पथ पर अग्रसर था, जबकि भारतीय समाज अपनी पुरानी मान्यताओं के अनुसार चलने के कारण विकास नहीं कर पा रहा था। संयोगवश भारत को 19वीं सदी में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महादेव गोविन्द राणाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन, एनी बेसेंट, मौलवी सैयद अहमद, दादाभाई आदि जैसे अनेक धर्म व समाजसुधारक नेताओं का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। इनके मार्गदर्शन में हमारे समाज एवं धर्म से रूढ़िवादिता एवं कट्टरवादिता का निस्सरण हुआ और भारतीय समाज एकता के सूत्र में बंधकर अपनी राष्ट्रीय अस्मिता को बचाने में तत्पर हुआ।

अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार

अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार का यद्यपि भारतीय सभ्यता पर नकारात्मक प्रभाव भी हुआ, तथापि नए विचारों एवं राजनीतिक जागरूकता

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...एवं अंग्रेजी शिक्षा अत्यंत सहायक भी सिद्ध हुई। ...के व्यापक प्रसार के कारण भारतीयों को वाल्टेयर, बेकन, बर्क, ...स्पेंसर, लॉर्ड मैकाले आदि की स्वतंत्रता और राष्ट्रवाद ...को जानने समझने का मौका मिला। इन विद्वान् दार्शनिकों ...और देशों की स्वतंत्रता की विशिष्टता को प्रकाशित ...से समृद्ध होकर भारतवासी भी स्वाधीनता के आग्रही ...विद्वानों के अतिरिक्त भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा का ...कि वे अपने देश के बाहर घटाए जा रहे सुधारवादी ...स्वतंत्रता की प्रकृति को समझने में सफल हुए। राष्ट्रीय ...की आवश्यकता का आभास भी उन्हें इसी कारण से हुआ, ...से कहा जा सकता है।

...विद्या का प्रसार

...ने रामाकांत देव, विश्वनाथ नारायण मण्डलिक, के.टी. ...दत्त हरप्रसाद शास्त्री, गोपाल भण्डारकर आदि जैसे विद्वानों ...के प्रचार-प्रसार का अथक प्रयास किया और भारतीय जनता ...गौरवपूर्ण अतीत को प्रस्तुत किया। अपने गौरवपूर्ण अतीत ...के कारण भारतीयों में हीनता की भावना उत्पन्न हो गई ...हीनता की भावना ने उन्हें पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े ...कर दिया था। सर विलियम जोंस द्वारा स्थापित ...सोसायटी (1784) ने भी भारत की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता ...को उजागर करने में काफी सहायता मिली। मैक्समूलर-जैसे ...चन्द्र लाल मित्र-जैसे देशी विद्वानों ने भारत की प्रतिष्ठा को ...प्रकाशित किया। इससे भारतीयों का स्वाभिमान फिर से जाग उठा ...प्रयास से अपने गौरवपूर्ण अतीत को फिर से बहाल करने के ...राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ।

...साहित्य का निर्माण

...आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद के विकास में साहित्य की भूमिका अत्यधिक ...रही। 19वीं सदी में भारत में विभिन्न भाषाओं में तथा विभिन्न विधाओं ...साहित्य की सर्जना हुई। साहित्य के विपुल सृजन से भारतीयों ...स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रेरणा मिली। 1860 में दीनबन्धु मित्र ने 'नील दर्पण', ...भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'भारत दुर्दशा', बंकिमचन्द्र चटर्जी ने 'आनन्द ...मधुसूदन दत्त ने 'मेघनाद वध' की रचना कर राष्ट्रीयता एवं ...की भावना का संचार भारत के जनसाधारण में किया। इनके ...रविन्द्रनाथ ठाकुर, मुंशी प्रेमचन्द आदि की रचनाओं ने भी राष्ट्रीयता ...को विकसित करने का कार्य किया। इस समय दक्षिण भारत ...सुब्रह्मण्यम भारती आदि और मराठी में विष्णु शास्त्री चिपलूणकर, ...ख, शिवराम महादेव पराञ्जपे आदि की रचनाएं भी प्रेरणादायक ...स्तुत; जनसाधारण में राष्ट्रीयता की भावना को सतत् जागृत ...म माध्यम साहित्य ही है, इस सच्चाई को जब भारत के ...च्छी तरह से समझ लिया, तब राष्ट्रवादी साहित्य की रचना ...इससे भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना का संचार हुआ।

...विकास

...ा अथवा समाज के राजनीतिक विकास में निश्चित ...हत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। साहित्य की अन्य विधाओं ...रहे भारत में दुर्भाग्यवश पत्रकारिता का विकास ...ऑगस्टस हिक्की के 'बंगाल गजट' से भारत में ...र आरंभिक दौर में बंगाल में ही इसका विकास ...सम्पूर्ण देश में पत्रकारिता का विकास हुआ। ...भ हो जाने से देश के विभिन्न भागों में अनेक ...हुआ। 'बंग-दर्शन', संवाद प्रभाकर', 'इंडियन ...जार पत्रिका', 'सुलभ समाचार', 'वॉइस ऑफ ...काश', 'उदन्त मार्त्तण्ड' (हिन्दी का पहला

समाचार-पत्र), ...केसरी, 'हिन्दू', 'स्वदेश मित्रम्', 'केसरी', 'एकोकोंट', 'हिन्दुस्तान' आदि समाचार पत्रों ने राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने के लिए सराहनीय कार्य किए।

शिक्षित भारतीयों में असंतोष

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में 1833 के चार्टर एक्ट तथा 1857 की क्रांति के बाद भारत का शासन ब्रिटिश सरकार द्वारा सीधे अपने हाथों में ले लिए जाने के बाद 1858 की घोषणा में इस बात का प्रावधान था कि योग्यता के आधार पर भारतीयों को भी उच्च पदों पर नियुक्त किया जाएगा। परन्तु, ये घोषणाएं कागज तक ही सीमित थीं, व्यावहारिक रूप में पर्याप्त योग्यता के बावजूद भारतीयों को सदा उच्च पदों से दूर रखा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षित वर्ग के योग्य भारतीयों ने शासन के प्रति असंतोष उभरा और उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि जबतक वे पराधीन रहेंगे, तबतक उनकी योग्यता की उपेक्षा की जाएगी। इन परिस्थितियों ने उन्हें स्वाधीनता के प्रति खुद को तो सचेष्ट किया ही, जनसाधारण में भी स्वाधीनता की भावना भरने के लिए प्रेरित किया।

काले एवं गोरे का विभेद

अंग्रेजों ने भारत में काले एवं गोरे के आधार पर हीनता एवं श्रेष्ठता की भावना को प्रचारित किया था। उनका एकमात्र उद्देश्य पाश्चात्य सभ्यता की श्रेष्ठता को स्थापित करना तथा पूर्वी सभ्यता को हीन साबित करना था। उनका लक्ष्य भारतीयों को मानसिक रूप से कमजोर बनाकर उन पर निर्विवाद रूप से शासन करना था। बाद में भारतीयों ने जब इस वास्तविकता को समझा, तब अंग्रेजों से मुक्ति पाना और स्वाधीनता की स्थापना उनका मुख्य उद्देश्य बन गया।

विषम एवं दयनीय आर्थिक स्थिति

'सोने की चिड़िया' के नाम से प्रसिद्ध भारत को आधुनिक काल में अंग्रेजों द्वारा इतना लूटा गया कि वह आर्थिक दृष्टि से दिवालिया हो गया। अंग्रेजी सरकार ने कभी भी भारत की आर्थिक बदहाली की ओर कभी भी ध्यान नहीं दिया--चाहे वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन हो अथवा प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार का। भारत से सस्ते मूल्य पर कच्चे माल को प्राप्त कर अंग्रेजों ने उन्हीं से निर्मित उत्पादों को भारी मूल्य पर भारत में ही बेचा। आयात शुल्क कम-से-कम कर दिया गया, जबकि निर्यात मूल्य अधिक-से-अधिक। इससे भारत की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी। इस बीच भारत में अनेक अकाल भी पड़े, परन्तु सरकार ने भारतीयों को मरते हुए अपने हाल पर छोड़ दिया। आर्थिक दिवालियापन और अकाल के समय भी अंग्रेजी सरकार की उदासीनता ने भारतीयों की भावना को उद्वेलित किया और स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया।

यातायात एवं संचार व्यवस्था का विकास

अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में अपनी सुविधा के लिए यातायात एवं संचार व्यवस्था का विकास किया। इनकी व्यवस्था से भारतीयों को भी देश-विदेश की गतिविधियों से अवगत होने एवं सम्पर्क स्थापित करने का मौका मिला। अबतक भारत के एक क्षेत्र के लोग दूसरे क्षेत्र के लोगों के साथ सम्पर्क में नहीं आए थे। परन्तु, जब से भारत में रेलवे तथा डाक एवं तार का विकास हुआ, तब से भारत के सभी क्षेत्रों के लोग एक-दूसरे के सम्पर्क में आए और उनमें वैचारिक आदान-प्रदान होने लगा। इस वैचारिक आदान-प्रदान से भारतीयों को व्यापक जीवन-दृष्टि मिली और उन्होंने स्वाधीनता की प्राप्ति को अपने जीवन का चरम लक्ष्य निर्धारित कर लिया।

अन्य देशों में स्वाधीनता आंदोलन की सफलता

19वीं शताब्दी में विश्व के अनेक देश लगातार संघर्ष के बाद स्वतंत्रत प्राप्त करने में सफल रहे थे। फ्रांस, यूनान, संयुक्त राज्य अमरीका, इटल आदि देशों को भी अपनी स्वाधीनता के लिए लम्बी अवधि तक आंदोल करना पड़ा था। इन देशों की स्वतंत्रता प्राप्ति की खबर से भारतीय जन भी स्वाधीनता आंदोलन के लिए प्रेरित हुई।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

राजनीतिक संगठनों का योगदान

भारत में राष्ट्रवाद के उदय में उन्नीसवीं सदी के राजनीतिक संगठनों की भूमिका सर्वाधिक उल्लेखनीय रही। 'हिन्दू मेला', 'पूना सार्वजनिक सभा', 'ईस्ट इण्डियन एसोसिएशन', 'इण्डियन लीग', 'इण्डियन एसोसिएशन', 'हिन्दू महाजन सभा', 'प्रेसिडेन्सी एसोसिएशन', 'ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया सोसायटी' आदि-जैसे राजनीतिक संगठनों ने क्षेत्रीय स्तर राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने का कार्य किया। बाद में इन्हीं क्षेत्रीय संगठन के प्रतिनिधियों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए कार्य किया और भारत को स्वाधीनता दिलवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। राजनीतिक संगठनों की विस्तृत चर्चा इसी अध्याय में आगे की जा रही है।

इलबर्ट विधेयक

भारत में जिन वायसरायों का शासन काल सबसे ज्यादा खराब रहा, उनमें से एक लॉर्ड लिटन था। उसी के शासन काल में 1876 में वर्नाकुलर प्रेस एक्ट पारित हुआ था। लिटन के बाद लॉर्ड रिपन को भारत का वायसराय बनाया गया। रिपन का शासन काल भारतीयों के हित में अनेक सुधार लेकर आया। रिपन ने वर्नाकुलर प्रेस एक्ट को समाप्त कर दिया तथा समाचार-पत्रों को स्वतंत्र विचार प्रकाशित करने की छूट दे दी। इसी काल में शैक्षणिक सुधार के लिए हंटर कमीशन का गठन किया गया, स्थानीय स्वशासन अधिनियम पारित किया गया, फैक्ट्री एक्ट पारित कर मजदूरों की स्थिति सुधारने की कोशिश की गयी।

वायसराय लॉर्ड रिपन के शासन काल में ही कानून विभाग के सदस्य सर. सी.पी. इलबर्ट ने एक विधेयक 1883 में प्रस्तुत किया। इस विधेयक के अनुसार भारत में रहने वाले यूरोपीय लोगों से संबंधित मुकदमों की सुनवाई का अधिकार भारतीय दण्डाधिकारियों को भी प्राप्त होता। परन्तु इलबर्ट द्वारा प्रस्तुत इस विधेयक के विरोध में भारत में रहने वाले अंग्रेजों ने अपनी आवाज बुलंद की। अंग्रेजों ने भारतीय न्यायाधीश द्वारा अपने विरुद्ध मुकदमें की सुनवाई को अपमान का विषय समझा। इन अंग्रेजों ने लॉर्ड रिपन के विरुद्ध आंदोलन चलाने का निश्चय किया। अंग्रेजों के व्यापक विरोध के कारण रिपन को प्रस्तावित विधेयक में आमूल परिवर्त्तन करना पड़ा।

वायसराय लॉर्ड रिपन द्वारा विधेयक को आमूल परिवर्तित किए जाने को भारतीयों ने मानहानि का प्रश्न बना लिया। ऐसा होना सर्वथोचित था, क्योंकि अपने ही देश में भारतीयों को इतना नीच समझा जाता था कि तमाम योग्यताओं और क्षमताओं के बावजूद अंग्रेजों के समकक्ष नहीं माने जाते थे। पराधीनता के कारण ही भारतीयों के साथ ऐसा अपमानजनक व्यवहार हो रहा था। इन परिस्थितियों को समझते हुए भारतीयों ने राष्ट्रीय एकता पर बल दिया और देश को स्वाधीन करने की दिशा में सकारात्मक प्रयास की आवश्यकता को महसूस किया। वस्तुतः, इलबर्ट विधेयक ने भारतीयों की आंखें खोल दीं और उनमें राष्ट्रीयता की भावना का संचार कर दिया।

कांग्रेस के गठन से पूर्व की राजनीतिक संस्थायें

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पूर्व भारत में कुछ ऐसी राजनीतिक संस्थाएं थीं, जिन्होंने कांग्रेस की स्थापना के लिए पृष्ठभूमि का कार्य किया। उस समय बंगाल में 'इण्डियन एसोसिएशन', बम्बई में 'प्रेसिडेंसी एसोसिएशन', मद्रास में 'हिन्दू महाजन सभा' और पूना में 'सार्वजनिक सभा' कार्यरत थीं। ये सभी संस्थाएं राजनीतिक जागृति लाने का कार्य कर रही थीं, किन्तु इनका कार्यक्षेत्र क्षेत्र-विशेष तक ही सीमित था।

1857 की क्रांति में भाग लेने वाले क्रांतिकारियों के परिजनों के साथ जी सरकार का व्यवहार निर्मम हो गया था। 1866 और 1877 में रानी ोरिया के सम्मान में दिल्ली-दरबार का आयोजन किया गया, जिसमें ' रुपए व्यर्थ परिव्ययित कर दिए गए, परन्तु अकालग्रस्त भारतीयों की नेक भी ध्यान नहीं दिया गया। न्यायालयों में न्याय का स्थान अन्याय या और पुलिस के नृशंस और बर्बर व्यवहार से आतंक का माहौल ो गया तथा अनावश्यक लगान-वृद्धि के कारण कृषकों की स्थिति गयी। रानी विक्टोरिया बार-बार सुधारों की घोषणा कर भारतीयों ालती रही, इसलिए बाद में भारतीय यह बात अच्छी तरह से समझने लगे कि अंग्रेज हमें छल-प्रपंच में डालकर अपना शासन चाहते हैं। इन परिस्थितियों में भारतीयों ने अंग्रेजी हुकूमत को अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा। फिर, राजनीतिक सुधार के लिए अपनी और स्थानीय संस्थाओं ने राष्ट्रीय स्तर की एकीकृत संस्था की आवश्यकता को महसूस किया और इस प्रकार 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना हुयी। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारत में जिन राजनीतिक संस्थाओं का गठन हुआ उनका नेतृत्व मुख्यतयाः समृद्ध एवं प्रभावशाली वर्ग के याचिकाओं एवं प्रार्थना-पत्रों के माध्यम से ब्रिटिश संसद के समक्ष रखीं—

- प्रशासनिक सुधार
- प्रशासन में भारतीयों की भागीदारी को बढ़ाना तथा
- शिक्षा का प्रसार

किंतु 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देश में जिन राजनीतिक संस्थाओं का गठन हुआ उसका नेतृत्व मुख्यतयाः मध्य वर्ग के द्वारा किया गया। वर्ग के विभिन्न लोगों जैसे—वकीलों, डाक्टरों, पत्रकारों तथा शिक्षकों ने इन राजनीतिक संगठनों को सशक्त नेतृत्व प्रदान किया इन संस्थाओं ने नेतृत्व प्रदान कर इन संस्थाओं की मांगों को परिपूर्णता एवं प्रामाणिकता की।

बंगाल में राजनीतिक संस्थाएं

बंगाल में राजनीतिक आंदोलनों के सबसे पहले प्रवर्तक राममोहन राय। वे पाश्चात्य विचारों से प्रभावित व्यक्ति थे। सर्वप्रथम अंग्रेजों का ध्यान भारतीय समस्याओं की ओर आकृष्ट किया। माना जाता है कि 1836 के चार्टर एक्ट की अनेक उदारवादी धाराएं के प्रयत्नों का परिणाम थीं। लेकिन बंगाल में सर्वप्रथम राजनीतिक बनाने का श्रेय उनके सहयोगियों को मिला, जब उन्होंने 1836 में प्रकाशक सभा का गठन किया।

जुलाई 1838 में जमींदारों के हितों की सुरक्षा के लिये जमींदारी एसोसिएशन जिसे लैंडहोल्डर्स एसोसिएशन के नाम से भी जाना जाता का गठन किया गया। जमींदारी एसोसिएशन भारत की पहली राजनीतिक सभा थी, जिसने संगठित राजनीतिक प्रयासों का शुभारम्भ किया। इसने सर्वप्रथम अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संवैधानिक प्रदर्शन का अपनाया।

1843 में एक अन्य राजनीतिक सभा बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी बनायी गयी, जिसका उद्देश्य लोगों में राष्ट्रवाद की भावना जगाना राजनीतिक शिक्षा को प्रोत्साहित करना था। सोसायटी, ब्रिटिश शासन प्रभाव से समाज के सभी वर्ग के लोगों की कठिनाइयों एवं दुखों पर विचार कर उनके समाधान ढूंढ़ने का प्रयत्न करती थी।

1851 में जमींदारी एसोसिएशन तथा बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी का आपस में विलय हो गया तथा एक नयी संस्था ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन का गठन हुआ। इसने ब्रिटेन की संसद को एक प्रार्थना भेजकर अपील की कि उसके कुछ सुझावों को कम्पनी के नये चार्टर में सम्मिलित किया जाये। जैसे—

(i) लोकप्रिय उद्देश्यों वाली पृथक विधायिका की स्थापना
(ii) उच्च वर्ग के नौकरशाहों के वेतन में कमी
(iii) नमक कर, आबकारी कर एवं डाक शुल्क में समाप्ति

एसोसिएशन के इन सुझावों को आंशिक सफलता मिली, जब 1853 के अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल की विधायी परिषद में कानून निर्माण में सहायता देने के लिये 6 नये सदस्यों को मनोनीत करने का प्रावधान किया गया।

1866 में दादा भाई नौरोजी ने लंदन में **ईस्ट इंडिया एसोसिएशन** का गठन किया। इसका उद्देश्य भारत के लोगों की समस्याओं और भावनाओं से ब्रिटेन को अवगत कराना तथा भारतवासियों के पक्ष में इंग्लैण्ड में जनसमर्थन तैयार करना था। कालांतर में भारत के विभिन्न भागों में इसकी शाखायें खुल गयीं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

कलकत्ता की ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन की शाखा के रूप में मद्रास नेटिव एसोसिएशन का गठन किया गया किंतु यह ज्यादा प्रभावी न हो सकी। मई 1884 में एम वीरराघवाचारी, बी. सुब्रह्मण्यम अय्यर एवं पी.आनंद चार्लू ने मद्रास महाजन सभा का गठन किया। इस सभा का उद्देश्य स्थानीय संगठन के कार्यों को समन्वित करना था।

कांग्रेस से पूर्ववर्ती अभियान

भारतीय राजनीतिक परिदृश्य पर अखिल भारतीय कांग्रेस के अभ्युदय से पूर्व इन राजनीतिक संस्थाओं ने अनेक आंदोलन या अभियान किये। जो इस प्रकार है—

(i) 1875 में कपास पर आयात शुल्क आरोपित करने के विरोध में।
(ii) सरकारी सेवाओं के भारतीयकरण हेतु (1878-79) में।
(iii) लार्ड लिटन की अफगान नीति के विरोध में।
(iv) शस्त्र अधिनियम (1878) के विरोध में।
(v) वर्नाकुलर प्रेस एक्ट (1878) के विरोध में।
(vi) स्वयंसेवक सेना में प्रवेश के अधिकार के समर्थन में।
(vii) 'प्लांटेशन लेबर' एवं 'इन्लैंड इमिग्रेशन एक्ट' के विरोध में।
(viii) इलबर्ट बिल के समर्थन में।
(ix) राजनीतिक प्रदर्शनों हेतु अखिल भारतीय कोष की स्थापना के समर्थन में।
(x) ब्रिटेन में भारत का समर्थन करने वाले दल के लिये मतों हेतु। तथा
(xi) भारतीय सिविल सेवा में प्रवेश की न्यूनतम आयु कम करने के समर्थन में।

इण्डियन एसोसिएशन ने इस संबंध में अखिल भारतीय प्रदर्शन किया। इसे ही 'भारतीय सिविल सेवा प्रदर्शन' के नाम से भी जाना जाता है।

पुनरीक्षण अभ्यास

प्रश्न	उत्तर
1. किस चार्टर अधिनियम द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारतीय व्यापार का एकाधिकार समाप्त कर दिया गया?	1. चार्टर एक्ट, 1813
2. 'इलबर्ट बिल' किसके समय में पेश किया गया था?	2. लार्ड रिपन
3. 'वर्नाकुलर प्रेस एक्ट' किसके समय में प्रस्तुत किया गया था?	3. लॉर्ड लिटन
4. 'इण्डियन सोसाइटी' की स्थापना किसने की थी?	4. आनंद मोहन बोस
5. 'पूना सार्वजनिक सभा' की स्थापना किसने की थी?	5. गणेश वसुदेव जोशी
6. 'लैंडहोल्डर्स सोसाइटी' की स्थापना कब की गई थी?	6. 1838
7. 'शिशिर कुमार घोष किस समाचार पत्र से संबंधित थे?	7. आनंद बाजार पत्रिका
8. 'बाम्बे एसोसिएशन' की स्थापना कब हुई थी?	8. 1852
9. 'बाम्बे महाजन सभा' की स्थापना किस वर्ष की गई थी?	9. 1884
10. 'मद्रास महाजन सभा' जांच समिति किस सत्याग्रह से संबंधित थी?	10. बारदौली सत्याग्रह
11. 'भैक्सवेल-ब्रूमफिल्ड' की स्थापना किसके द्वारा की गई थी?	11. शिशिर कुमार घोष
12. 'इण्डिया लीग' की स्थापना से कौन-कौन संबंधित थे?	12. फिरोजशाह मेहता, डब्ल्यू.सी. बनर्जी
13. 'लंदन इण्डियन सोसाइटी' की स्थापना कहां हुई थी?	13. लंदन
14. 'ईस्ट इण्डिया एसोसिएशन' की स्थापना किसके द्वारा की गई थी?	14. मैरी कारपेंटर
15. 'नेशनल इण्डियन एसोसिएशन' की स्थापना किसके द्वारा की गई थी?	15. इण्डियन एसोसिएशन
16. सिविल सेवा परीक्षा की अधिकतम आयु सीमा 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर दिये जाने का विरोध किस संगठन के नेतृत्व में किया गया था?	16. बालगंगाधर तिलक
17. 'केसरी' समाचार पत्र का संपादक कौन था?	17. बंकिम चन्द्र चटर्जी
18. 'आनंदमठ' पुस्तक की रचनाकार कौन था?	18. अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य, अकबर
19. 'स्वतंत्रता आंदोलन' के दौरान किन-किन भारतीय राजाओं को राष्ट्रीय हीरो के रूप प्रस्तुत किया गया?	19. राजाराम मोहन राय
20. 'सामाजिक क्रांति' के प्रणेता के रूप में किस भारतीय ने ख्याति पाई?	20. राजाराम मोहन राय
21. समाचार पत्रों पर लगा प्रतिबंध किसके प्रयास से समाप्त हुआ?	21. आत्माराम पांडुरंगा
22. 'आर्य समाज' की स्थापना किसने की थी?	22. दयानन्द सरस्वती
23. 'सत्य प्रकाश' नामक पुस्तक किसके द्वारा लिखी गई थी?	23. केशव चन्द्रसेन
24. 'प्रार्थना समाज' की स्थापना किसके द्वारा की गई थी?	24. 1829
25. 'प्रेस' पर किस वर्ष प्रतिबंध लगाया गया?	25. ईश्वर चन्द्र विद्या सागर
26. विधवा पुनर्विवाह कानून किसके प्रयासों से बनाया गया?	

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

4. स्वतंत्रता संघर्ष की शुरुआत प्रारंभिक चरण (1885-1918)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

उद्देश्य एवं कार्यक्रम

कांग्रेस के गठन से पूर्व देश में एक अखिल भारतीय संस्था के गठन की भूमिका तैयार हो चुकी थी। 19वीं शताब्दी के छठे दशक से ही राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्यकर्ता एक अखिल भारतीय संगठन के निर्माण में प्रयासरत थे। किंतु इस विचार को मूर्त एवं व्यावहारिक रूप देने का श्रेय एक सेवानिवृत्त अंग्रेज अधिकारी ए.ओ. ह्यूम को प्राप्त हुआ। ह्यूम ने 1883 में ही भारत के प्रमुख नेताओं से सम्पर्क स्थापित किया। इसी वर्ष अखिल भारतीय कांग्रेस का आयोजन किया गया। 1884 में उन्हीं के प्रयत्नों से एक संस्था 'इंडियन नेशनल यूनियन' की स्थापना हुयी। इस यूनियन ने पूना में 1885 में राष्ट्र के विभिन्न प्रतिनिधियों का सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय लिया और इस कार्य का उत्तरदायित्व भी ए.ओ. ह्यूम को सौंपा। लेकिन पूना में हैजा फैल जाने से उसी वर्ष यह सम्मेलन बम्बई में आयोजित किया गया। सम्मेलन में भारत के सभी प्रमुख शहरों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया, यहीं सर्वप्रथम 'अखिल भारतीय कांग्रेस' का गठन किया गया। ए.ओ. ह्यूम के अतिरिक्त सुरेंद्रनाथ बनर्जी तथा आनंद मोहन बोस कांग्रेस के प्रमुख वास्तुविद (Architects) माने जाते हैं।

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता व्योमेश चंद्र बनर्जी ने की तथा इसमें 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसके पश्चात प्रतिवर्ष भारत के विभिन्न शहरों में इसका वार्षिक अधिवेशन आयोजित किया जाता था। देश के प्रख्यात राष्ट्रवादी नेताओं ने कांग्रेस के प्रारंभिक चरण में इसकी अध्यक्षता की तथा उसे सुयोग्य नेतृत्व प्रदान किया। इनमें प्रमुख हैं—दादा भाई नौरोजी (तीन बार अध्यक्ष), बदरुद्दीन तैय्यबजी, फिरोजशाह मेहता, पी. आनंद चार्लू, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, रोमेश चंद्र दत्त, आनंद मोहन बोस और गोपाल कृष्ण गोखले। कांग्रेस के अन्य प्रमुख नेताओं में महादेव गोविंद रानाडे, बाल गंगाधर तिलक, शिशिर कुमार घोष, मोतीलाल घोष, मदन मोहन मालवीय, जी. सुब्रह्मण्यम अैय्यर, सी. विजयराघवाचारी तथा दिनशा वाचा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रथम महिला स्नातक कादम्बिनी गांगुली ने कांग्रेस में प्रथम बार कांग्रेस को संबोधित किया। इस सम्बोधन का कांग्रेस के इतिहास में दूरगामी महत्व था क्योंकि इससे राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष में महिलाओं की सहभागिता परिलक्षित होती है।

राष्ट्रीय कांग्रेस के अतिरिक्त प्रांतीय सभाओं, संगठनों, पत्रिकाओं एवं साहित्य के माध्यम से भी राष्ट्रवादी गतिविधियां संचालित की गयीं।

राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्देश्य एवं कार्यक्रम इस प्रकार थे—

(i) राजनीतिक राष्ट्रवादी आंदोलन चलाना।

(ii) लोगों को राजनीतिक लक्ष्यों से परिचित कराना तथा उन्हें शिक्षित करना।

(iii) कार्य के लिये मुख्यालय की स्थापना।

(iv) विभिन्न भागों के राजनीतिक नेताओं तथा कार्यकर्ताओं के बीच संपर्क की स्थापना को प्रोत्साहित करना।

(v) विरोधी विचारधारा को प्रोत्साहन एवं समर्थन।

(vi) आर्थिक एक राजनीतिक कार्यक्रम हेतु देशवासियों को जाति, धर्म एवं प्रांतीयता की भावना से ऊपर उठाकर एक राष्ट्रवादी अनुभव को जागृत करना।

(vii) भारतीय राष्ट्रवादी भावना को प्रोत्साहन एवं उत्साह प्रदान करना।

प्रारंभिक उदारवादियों के राजनीतिक कार्य

कांग्रेस का प्रथम चरण (1885-1905)

कांग्रेस के इस चरण को उदारवादी चरण के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इस चरण में आंदोलन का नेतृत्व मुख्यतया: उदारवादी नेताओं के हाथों में रहा। इनमें दादा भाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, दिनशा वाचा, डब्ल्यू.सी. बनर्जी, एस.एन. बनर्जी, रासबिहारी घोष, आर.सी. दत्त, बदरुद्दीन तैयबजी, गोपाल कृष्ण गोखले, पी.आर. नायडू, आनंद चार्लू एवं मदन मोहन मालवीय इत्यादि प्रमुख थे। इन नेताओं को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के प्रथम चरण के नेताओं के नाम से भी जाना जाता है। ये नेता उदारवादी नीतियों एवं अहिंसक विरोध प्रदर्शन में विश्वास रखते थे। इनकी यह विचारधारा इन्हें 20वीं शताब्दी के प्रथम दशक में उभरने वाले नव-राष्ट्रवादियों जिन्हें उग्रवादी कहते थे, से पृथक् करती है।

उदारवादी, कानून के दायरे में रहकर अंहिंसक एवं संवैधानिक प्रदर्शन के पक्षधर थे। यद्यपि उदारवादियों की यह नीति अपेक्षाकृत धीमी थी किंतु इससे क्रमबद्ध राजनीतिक विकास की प्रक्रिया प्रारंभ हुयी। उदारवादियों का मत था कि अंग्रेज भारतीयों को शिक्षित बनाना चाहते हैं तथा वे भारतीयों की वास्तविक समस्याओं से बेखबर नहीं हैं। अतः यदि सर्वसम्मति से सभी देशवासी प्रार्थनापत्रों, याचिकाओं एवं सभाओं इत्यादि के माध्यम से सरकार से अनुरोध करें तो सरकार धीरे-धीरे उनकी मांगें स्वीकार कर लेगी।

अपने इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये उदारवादियों ने दो प्रकार की नीतियों का अनुसरण किया। पहला, भारतीयों में राष्ट्रप्रेम एवं चेतना जागृत कर राजनीतिक मुद्दों पर उन्हें शिक्षित करना एवं उनमें एकता स्थापित करना। दूसरा, ब्रिटिश जनमत एवं ब्रिटिश सरकार को भारतीय पक्ष में करके भारत में सुधारों की प्रक्रिया प्रारंभ करना। अपने दूसरे उद्देश्यों के लिये राष्ट्रवादियों ने 1899 में लंदन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी 'इंडिया' की स्थापना की। दादाभाई नौरोजी ने अपने जीवन का काफी समय इंग्लैंड में बिताया तथा विदेशों में भारतीय पक्ष में जनमत तैयार करने का प्रयास किया। 1890 में नौरोजी ने 2 वर्ष पश्चात (अर्थात 1892 में) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन लंदन में आयोजित करने का निश्चय किया किंतु 1891 में लंदन में आम चुनाव आयोजित किये जाने के कारण उन्होंने यह निर्णय स्थगित कर दिया।

उदारवादियों का मानना था कि ब्रिटेन से भारत का सम्पर्क होना भारतीयों के हित में है तथा अभी ब्रिटिश शासन को प्रत्यक्ष रूप से चुनौती देने का यथोचित समय नहीं आया है इसीलिये बेहतर होगा कि उपनिवेशी शासन को भारतीय शासन में परिवर्तित करने का प्रयास किया जाये।

उदारवादियों का राष्ट्रीय आंदोलन में निम्नलिखित प्रकार से योगदान रहा—

ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आर्थिक नीतियों की आलोचना: अनेक उदारवादी नेताओं यथा-दादाभाई नौरोजी, आर.सी. दत्त, दिनशा वाचा एवं कुछ अन्य ने ब्रिटिश शासन की शोषणमूलक आर्थिक नीतियों का अनावरण किया तथा उसके द्वारा भारत में किये जा रहे आर्थिक शोषण के लिये 'निकास सिद्धांत' का प्रतिपादन किया। इन्होंने स्पष्ट किया कि ब्रिटिश साम्राज्य की नीतियों का परिणाम भारत को निर्धन बनाना है। इनके अनुसार, सोची-समझी

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(1885-1918)

पता की भावना से उठाकर उन्हें

प्रोत्साहन एवं उसका प्रसार।

जनीतिक कार्य या

(1885-1905)

के नाम से भी जाना जाता

प्रायः उदारवादी नेताओं

शाह मेहता, दिनशा वाचा,

आर.सी. दत्त, बदरुद्दीन

द चार्लू एवं पंडित मदन

रतीय राष्ट्रीय आंदोलन

है। ये नेता उदारवादी

। इनकी यह विशेषता

र-राष्ट्रवादियों जिन्हें

संवैधानिक प्रदर्शनों

त धीमी थी किंतु

उदारवादियों का

तथा वे भारतीयों

सम्मति से सभी

रम से सरकार

कर लेगी।

ते प्रकार की

तना जागृत

पेत करना।

रके भारत

ट्रवादियों

'इंडिया'

इंग्लैंड

प्रयास

राष्ट्रीय

1891

र्णय

ना

ी

निभायी तथा अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। राष्ट्रवादियों ने इनके माध्यम से विभिन्न भारतीय समस्याओं की ओर ब्रिटिश सरकार का ध्यान आकर्षित किया। अक्षम कार्यपालिका की खामियां उजागर करना, भेदभावपूर्ण नीतियों एवं प्रस्तावों का विरोध करना तथा आधारभूत आर्थिक मुद्दों को उठाने जैसे कार्य इन राष्ट्रवादियों ने इन परिषदों के माध्यम से किये।

इस प्रकार राष्ट्रवादियों ने साम्राज्यवादी सरकार की वास्तविक मंशा को उजागर किया तथा स्वशासन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्ध हासिल की। उन्होंने देश के लोगों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना जगाने का कार्य किया। राष्ट्रवादियों के इन कार्यों से भारतीयों में साम्राज्यवाद विरोधी भावनाओं का प्रसार हुआ। लेकिन इन उपलब्धियों के बावजूद राष्ट्रवादियों की सबसे प्रमुख असफलता यह रही कि वे इन कार्यक्रमों एवं अभियानों का जनाधार नहीं बढ़ा सके। मुख्यतयाः महिलाओं की भागदारी नगण्य रही तथा सभी को मत देने का अधिकार भी नहीं प्राप्त हुआ।

सामान्य प्रशासकीय सुधारों हेतु उदारवादियों के प्रयासः इसमें निम्न प्रयास सम्मिलित थे—

(i) सरकारी सेवाओं के भारतीयकरण की मांगः इसका आधार आर्थिक हो। क्योंकि विभिन्न प्रशासकीय पदों पर अंग्रेजों की नियुक्ति से देश पर भारी आर्थिक बोझ पड़ता है, जबकि भारतीयों की नियुक्ति से आर्थिक बोझ में कमी होगी। साथ ही अंग्रेज अधिकारियों एवं कर्मचारियों को जो वेतन एवं भत्ते मिलते हैं, वे उसका काफी बड़ा हिस्सा इंग्लैण्ड भेज देते हैं। इससे भारतीय धन का निकास होता है। इसके अतिरिक्त नैतिक आधार पर भी यह गलत था कि भारतीयों के साथ भेदभाव किया जाये तथा उन्हें प्रशासकीय पदों से दूर रखा जाये।

(ii) न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथक्करण।

(iii) पक्षपातपूर्ण एवं भ्रष्ट नौकरशाही तथा लंबी एवं खर्चीली न्यायिक प्रणाली की भर्त्सना।

(iv) ब्रिटिश सरकार की आक्रामक विदेश नीति की आलोचना। बर्मा के अधिग्रहण, अफगानिस्तान पर आक्रमण, एवं उत्तर-पूर्व में जनजातियों के दमन का कड़ा विरोध।

(v) विभिन्न कल्याणकारी मदों यथा-स्वास्थ्य, स्वच्छता इत्यादि में ज्यादा व्यय की मांग। प्राथमिक एवं तकनीकी शिक्षा में ज्यादा व्यय पर जोर, कृषि पर जोर एवं सिंचाई सुविधाओं का विस्तार, कृषकों हेतु कृषक बैंकों की स्थापना इत्यादि।

(vi) भारत के बाहर अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों में कार्यरत भारतीय मजदूरों की दशा में सुधार करने की मांग। इनके साथ हो रहे अत्याचार एवं प्रजातीय उत्पीड़न को रोकने की अपील।

दीवानी अधिकारों की सुरक्षाः इसके अंतर्गत विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता, संगठन बनाने एवं प्रेस की स्वतंत्रता तथा भाषण की स्वतंत्रता के मुद्दे सम्मिलित थे। उदारवादी या नरमपंथियों ने इन अधिकारों की प्राप्ति के लिये एक सशक्त आंदोलन चलाया तथा इस संबंध में भारतीय जनमानस को प्रभावित करने में सफलता पायी। इसके परिणामस्वरूप शीघ्र ही दीवानी अधिकारों की सुरक्षा का मुद्दा राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का अभिन्न हिस्सा बन गया। उदारवादियों के इन कार्यों से भारतीयों में चेतना जाग्रत हुयी एवं जब 1897 में बाल गंगाधर तिलक एवं अन्य राष्ट्रवादी नेताओं तथा पत्रकारों को गिरफ्तार किया गया तो इसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुयी। नाटू बंधुओं की गिरफ्तारी एवं निर्वासन के प्रश्न पर भी भारतीयों ने कड़ा रोष जाहिर किया।

मूल्यांकनः इस प्रकार, 1885 से 1905 तक बीस वर्षों के काँग्रेस के नरमपंथी चरण के दौरान भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने एक महत्त्वपूर्ण पड़ा तक की यात्रा तय कर ली। यद्यपि इस अवधि के दौरान कोई अत्य उल्लेखनीय परिवर्त्तन नहीं दिखाई पड़ा। पर, 1905 में जो आंदोलन का र बदला, वही शायद इस चरण की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। दादाभाई नौर के शब्दों में (1905)—"नई पीढ़ी में जो असंतोष और बेचैनी खुद इसने (कां

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(1) अपने चिन्तन पैदा की है कि यह शोषण और पर प्रशासनिक संगठन है, वह इसको अब तक की सबसे अच्छी उपलब्धियों में से है। यह इसकी अपनी विकास और प्रगति है—इसके सामने आम यह है कि क्रांति की शुरुआत हो—चाहे यह शान्तिपूर्ण हो या हिंसक। क्रांति कैसी होगी, यह तो ब्रिटिश सरकार की अकस्मादी या बेवकूफी और ब्रिटिश लोगों की कार्यवाइयों पर निर्भर करता है।' अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद जनता में एक ही भारतीय राष्ट्र की राष्ट्रीयता का भाव पैदा करने का श्रेय तो कांग्रेस ने ही जाती राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विचारों को एक सामान्य और अपने एक शत्रु का भाव पैदा करने के लिए खड़ा करने है। फिर, जनता में राजनीतिक चेतना, प्रजातांत्रिक शासन में आस्था, धर्मनिरपेक्षता में विश्वास, स्वतंत्रता व स्वराज्य की आकांक्षा आदि लाने का श्रेय भी बहुत हद तक कांग्रेस को ही है। और, सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि इसने आर्थिक विश्लेषण और राजनीतिक विचारों द्वारा पहली बार जनता के समक्ष साम्राज्यवाद की बुराइयों का पर्दाफाश किया और उससे मुक्ति पाने के लिए लोगों को उत्प्रेरित किया।

उग्रवादी पक्ष (1906-1918)

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों विशेषतया 1890 के पश्चात भारत में उग्र राष्ट्रवाद का उदय प्रारंभ हुआ तथा 1905 तक आते-आते इसने पूर्ण स्वरूप धारण कर लिया। किंतु इसके पीछे क्या कारण थे?

कांग्रेस की अनुनय-विनय की नीति से ब्रिटिश सरकार पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा तथा वे शासन में मनमानी करते रहे। इसके प्रतिक्रियास्वरूप इस भावना का जन्म हुआ कि स्वराज्य मांगने से नहीं अपितु संघर्ष से प्राप्त होगा। संवैधानिक आंदोलन से भारतीयों का विश्वास उठ गया। अतः संघर्ष द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने की जिस भावना का जन्म हुआ उसे ही उग्र राष्ट्रवाद की भावना कहते हैं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एक दल इसी भावना का कट्टर समर्थक था। इस दल का मत था कि कांग्रेस का ध्येय स्वराज्य होना चाहिए, जिसे वे आत्मविश्वास या आत्म-निर्भरता से प्राप्त करें। यह दल उग्रवादी कहलाया।

जिन तत्वों के कारण उग्र-राष्ट्रवाद का जन्म हुआ, उसमें प्रमुख निम्नानुसार हैं—

(1) 1892 से 1905 के बीच घटी राजनीतिक घटनाओं तथा लार्ड कर्ज़न के शासन से राष्ट्रवादी निराश हो चुके थे। कांग्रेस के निरंतर दबाव के कारण प्रशासन के भारतीयकरण और विधान निर्माण के कार्य को जनतांत्रिक आधार देने के लिए घोषित किया गया। 1892 का अधिनियम र्णतः निराशाजनक रहा। साथ ही विभिन्न अधिनियम के द्वारा मौजूदा नीतिक अधिकारों पर भी आघात किया गया था।

(2) देशी भाषाओं के समाचार-पत्रों के बढ़ते प्रचलन के साथ ीतिक गतिविधियों के सम्भावित आधार में भी तेजी से विस्तार हो रहा लकत्ता के बंगबासी और पुणे के केसरी और काल जैसे कुछ अत्यन्त समाचार-पत्र कांग्रेस की उदारवादी राजनीति के कटु आलोचक

बाह्य घटनाओं ने श्वेत लोगों की प्रजातीय श्रेष्ठता की भावना ेद्ध करके उग्रवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वर्ष हुए आधुनिक जापान के उदय से यह सिद्ध हो गया था कि ा एशियाई देश विकसित देशों की सहायता और मार्गदर्शन ति कर सकता है। 1905 में रूस पर उसकी विजय तथा में इथोपिया के हाथों इटली की पराजय ने निश्चित रूप दिया कि प्रजातीय श्रेष्ठता के सभी दावे मिथ्या हैं। न ने 3 दिसंबर, 1903 को यह घोषणा करके कि 16 ाल का विभाजन हो जाएगा, उसने अदूरदर्शी नीति से हिंसक राष्ट्रवाद को उत्तेजना मिली।

कुल मिलाकर यह असर हुआ कि कांग्रेस संगठन

में उग्रवादी दल ... और 1905 में हुआ ... जिससे जनता चकित और स्तंभित रह गई थी।

उग्रवादियों के कार्यक्रम

यह अनुभव किया जाने लगा कि आजादी उपहार के ... वाली नहीं है, वरन् उसके लिए कठिन और लंबा संघर्ष करना ... संघर्षवादियों के सामने जो राजनीतिक कार्य था, वह बहुत कठिन ... को उस परिधमी प्रभाव से मुक्ति दिलाने—जिसकी धाक जमी हुई था—उसे ... जो भारतीय जनजीवन के प्रत्येक पक्ष पर छायी हुयी था—उसे ... की भावना पैदा करने और स्वराज्य की इच्छा की पूर्ति के उद्देश्य ... मान्यताओं को पुनर्जीवत करने के लिए यह आवश्यक था कि लोगों ... की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक श्रेष्ठता का विश्वास दिलाए जाए। ... की प्राप्ति के लिए भारत की नवोदित शक्तियों का प्रतिनिधित्व ... संघर्षवादी नेताओं ने प्राचीन भारतीय परंपराओं तथा भारतीय ... प्रति गर्व की भावना पैदा करने के लिए धर्म पर आधारित-यह ... अंधदेशभक्ति पर आधारित-नारों को गढ़ा। तिलक ने इस बात ... किया कि, एक विदेशी सरकार जनता के निजी और व्यक्तिगत ... हस्तक्षेप करे। वर्ष 1891 के विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने वाले ... को लेकर उनका सुधारकों से झगड़ा हो गया। उन्होंने वर्ष 1893 में ... महोत्सव' प्रारंभ किया। वर्ष 1893-94 में अरविंद घोष ने 'इन्दुप्रकाश' ... में 'न्यू लैम्प्स फार ओल्ड' का प्रकाशन किया। तिलक ने वर्ष 1893 ... में कांग्रेस के पण्डाल में 'नेशनल सोशल कांफ्रेन्स' को ... अधिवेशन नहीं करने दिया और इस प्रकार उसे चुनौती दी। 'नेशनल ... कांफ्रेन्स' उदारवादियों के प्रभाव में थी। इसी वर्ष (1895) पूना सार्वजनिक ... सभा पर भी उदारवादियों के स्थान पर उग्रवादियों का प्रभुत्व हो ... 'शिवाजी उत्सव' का आयोजन प्रथम बार 15 अप्रैल 1896 को हुआ। 4 ... 1896 को दक्षिण सभा की स्थापना से महाराष्ट्र में नरम दल और ... का पूरी तरह मतभेद हो गया लेकिन पूरे भारत में अभी इन दोनों ... मतभेद अलगाव की स्थिति तक नहीं पहुँचे थे।

इस प्रकार संघर्षवादी नेताओं ने भारत के राजनीतिक जीवन के ... नए चरण का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने नरमवादियों की समझौतापूर्ण ... राजनीति और ब्रिटिश न्यायप्रियता और ईमानदारी में विश्वास की नीति ... परित्याग करने की पहल की। उन्होंने आर्थिक जंजीरों के बंधन को ... करने की ही माँग नहीं की वरन् स्वतंत्र आर्थिक विकास की योजना भी ... इन्हीं नेताओं ने सर्वप्रथम खुलकर यह बात कही कि राजनीतिक आज़ादी ... ही राष्ट्र का जीवन है और स्वराज्य की प्राप्ति ही उस आज़ादी की ... अवस्था है। उनमें से अनेक यह भी मानते थे कि आज़ादी का अर्थ यह ... कि ब्रिटिश राज का स्थान सभ्रांत वर्ग का राज्य ले ले। लाला लाजपतराय ... और विपिन चंद्र पाल ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे स्वतंत्र भारत में ... समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें 90 प्रतिशत जनता के ... को प्रमुखता दी जाए। इसी अवधि में किसानों में आंदोलन की झलक ... को मिली, जिसका राष्ट्रीय प्रेस में व्यापक प्रचार किया गया। इसी ... में तिलक को 6 वर्ष के कारावास का दंड दिए जाने के विरोध में ... राजनीतिक प्रश्न को लेकर वस्त्र उद्योग में पहली बार हड़ताल हुई।

बंगाल का विभाजन

आरंभ में बंग-भंग का मुख्य उद्देश्य प्रशासनिक कठिनाइयां दूर करना था। सर्वप्रथम 1853 में चार्ल्स ग्रार्ल्स ने और फिर 1854 में डलहौजी ने ... लगान-वसूली में दिक्कतों का जिक्र करते हुए बंगाल के विभाजन का प्रस्ताव ... किया था। 1874 में बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर जॉर्ज कैम्पबैल ने फिर इसकी ... शिकायत की और 1876 में असम एवं तीन बँगलाभाषी जिलों—सिलहट, ... कछार और गोलपाड़ा को अलग राज्य का दर्जा दे दिया गया। 1896 ... असम के चीफ कमिश्नर विलियम वार्ड ने असम के पिछड़ेपन पर ...

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...रते हुए बंगाल के तीन जिलों ढाका, चटगाँव एवं मैमनसिंह को ...जिलों देने की माँग की। पर, उनके उत्तराधिकारी हेनरी कॉटन ने ...वासियों की भावना पर चोट करनेवाली घटना मानते हुए प्रस्ताव ...किया। उन्होंने गवर्नर जनरल को लिखा कि यह घटना जनविरोध ...का कारण होगी। सचमुच, वार्ड के प्रस्ताव के विरोध में अनेक ...में आयोजित हुई और विरोधपत्र भेजे गए। बंगाल लेजिस्लेटिव ...के सदस्य सिराज-उल-इसलाम खान बहादुर ने भी प्रस्ताव के ...में तार भेजा।

...लार्ड कर्जन 30 दिसम्बर, 1898 को भारत का गर्वनर जनरल ...। इसके पीछे सरकार ने तर्क दिया कि बंगाल की विशाल आबादी ...प्रशासन का सुचारू रूप से संचालन कठिन हो गया है। यद्यपि ...तक सरकार का यह तर्क सही था किंतु अंग्रेजों की वास्तविक ...सीमा उसकी दमनात्मक प्रवृत्ति शीघ्र ही जाहिर हो गई। उधर, असम ...उत्तराधिकारी चैम्फलाइ फूलर ने वार्ड के प्रस्ताव का पुनः ...कर दिया था। बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर जॉन युडबर्न (1898. ...और ही थी। उनका मुख्य उद्देश्य बंगाल को दुर्बल करना था क्योंकि ...बंगाल भारतीय राष्ट्रवाद का सबसे प्रमुख केंद्र था। बंगाल विभाजन ...बंगालियों को प्रशासनिक सुविधा के लिये दो तरह से विभाजित ...गया। (i) भाषा के आधार पर—(इससे बंगाली भाषा-भाषी बंगाल ...अल्पसंख्यक बन गये, क्योंकि 1 करोड़ 70 लाख लोग बंगाली भाषा ...थे, जबकि हिन्दी एवं उड़िया बोलने वालों की संख्या 3 करोड़ 70 ...थी) एवं (ii) धर्म के आधार पर—क्योंकि पश्चिमी बंगाल हिन्दू बहुसंख्यक ...था, जहां हिन्दुओं की संख्या कुल 5 करोड़ 40 लाख में से 4 करोड़ ...लाख थी तथा पूर्वी बंगाल मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्र था, जहां कुल आबादी ...करोड़ 10 लाख में से मुसलमानों की आबादी 1 करोड़ 80 लाख थी। ...मुसलमानों के प्रति प्यार दिखाते हुये कर्जन ने कहा कि ढाका नये मुस्लिम ...प्रांत (पूर्वी बंगाल) की राजधानी बन सकता है, क्योंकि इससे मुसलमानों ...एकता बढ़ेगी, जो कि मुगल शासकों के समय उनमें पायी जाती थी। ...प्रकार बंगाल विभाजन के निर्णय से स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज, कांग्रेस ...स्वतंत्रता आंदोलन को दुर्बल बनाने के लिये मुस्लिम सम्प्रदायवाद को ...चाहते थे।

स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन ...दिसम्बर 1903 में अंग्रेज सरकार ने बंगाल विभाजन की सार्वजनिक ...की। इसके पीछे सरकार ने तर्क दिया कि बंगाल की विशाल आबादी ...प्रशासन का सुचारू रूप से संचालन कठिन हो गया है। यद्यपि ...तक सरकार का यह तर्क सही था किंतु अंग्रेजों की वास्तविक ...सीमा और ही थी। उनका मुख्य उद्देश्य बंगाल को दुर्बल करना था क्योंकि ...बंगाल भारतीय राष्ट्रवाद का सबसे प्रमुख केंद्र था। बंगाल विभाजन ...बंगालियों को प्रशासनिक सुविधा के लिये दो तरह से विभाजित ...गया। (i) भाषा के आधार पर—(इससे बंगाली भाषा-भाषी बंगाल ...अल्पसंख्यक बन गये, क्योंकि 1 करोड़ 70 लाख लोग बंगाली भाषा ...थे, जबकि हिन्दी एवं उड़िया बोलने वालों की संख्या 3 करोड़ 70 ...थी) एवं (ii) धर्म के आधार पर—क्योंकि पश्चिमी बंगाल हिन्दू बहुसंख्यक ...था, जहां हिन्दुओं की संख्या कुल 5 करोड़ 40 लाख में से 4 करोड़ ...लाख थी तथा पूर्वी बंगाल मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्र था, जहां कुल आबादी ...करोड़ 10 लाख में से मुसलमानों की आबादी 1 करोड़ 80 लाख थी। ...मुसलमानों के प्रति प्यार दिखाते हुये कर्जन ने कहा कि ढाका नये मुस्लिम ...प्रांत (पूर्वी बंगाल) की राजधानी बन सकता है, क्योंकि इससे मुसलमानों ...एकता बढ़ेगी, जो कि मुगल शासकों के समय उनमें पायी जाती थी। ...प्रकार बंगाल विभाजन के निर्णय से स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज, कांग्रेस ...स्वतंत्रता आंदोलन को दुर्बल बनाने के लिये मुस्लिम सम्प्रदायवाद को ...चाहते थे।

स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन में आंदोलनकारियों ने विदेशी वस्त्रों ...की होली जलाई तथा अंग्रेज सरकार के समक्ष अपना विरोध प्रकट किया। ...चूंकि ब्रिटिश सरकार ने इस आंदोलन को दबाने के लिये दमन का सहारा ...लिया फलतः सरकारी दमन के विरोध में उग्रवादी गतिविधियां प्रारंभ हो गयीं।

उदारवादियों द्वारा बंगाल विभाजन का विरोध (1903-1905): इस ...काल में उदारवादी, जिन्होंने बंगाल विभाजन के विरोध में सक्रिय भूमिका ...निभायी सुरेंद्रनाथ बनर्जी, के.के. मित्रा तथा पृथ्वीशचंद्र राय प्रमुख थे। ...उदारवादियों ने सरकार के इस निर्णय के विरोध में सरकार को प्रार्थनापत्र ...दीं, सभायें आयोजित कीं, निंदा प्रस्ताव पारित किये तथा *हितवादी*, ...संजीवनी एवं *बंगाली* जैसे पत्रों के माध्यम से बंगाल विभाजन का विरोध ...किया। उदारवादियों का उद्देश्य था कि भारत एवं इंग्लैण्ड में शिक्षित भारतीयों ...माध्यम से एक ऐसा जनमत तैयार किया जाये जो बंगाल विभाजन के ...को वापस लेने हेतु अंग्रेज सरकार पर दबाव डाल सके।

...किंतु भारतीयों के विरोध स्वर की उपेक्षा करते हुये भी सरकार ने जुलाई ...बंगाल विभाजन की घोषणा कर दी। इस घोषणा के कुछ दिनों

के भीतर ही लगभग पूरे बंगाल में विरोध सभायें आयोजित की गयीं। इन सभाओं में सबसे पहले विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का निर्णय लिया गया। 7 अगस्त 1905 को बंगाल विभाजन के विरोध में कलकत्ता के टाउन हाल में एक विशाल प्रदर्शन आयोजित किया गया जहां से स्वदेशी आंदोलन प्रारंभ करने की घोषणा की गयी। इसके पश्चात राष्ट्रवादी नेताओं ने बंगाल के विभिन्न भागों का दौरा किया तथा लोगों से मैनचेस्टर के कपड़ों एवं लिवरपूल के बने नमक का बहिष्कार करने का आग्रह किया।

16 अक्टूबर 1905 को जब बंगाल विभाजन विधिवत रूप से लागू हुआ, आंदोलनकारियों ने यह दिन 'शोक दिवस' के रूप में मनाया। लोगों ने व्रत रखे, गंगा में स्नान किया तथा नंगे पांव पदयात्रा करते हुये वंदे मातरम गीत गाया। (कालांतर में वंदे मातरम गीत, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का सबसे मुख्य गीत बन गया)। विभाजित बंगाल के दोनों भागों के लोगों ने आपसी एकता प्रदर्शित करने हेतु एक-दूसरे के हाथों में राखियां बांधी। इसी दिन सुरेंद्रनाथ बनर्जी एवं आनंद मोहन बोस ने एक विशाल जनसभा को संबोधित किया, जो कि स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित संभवतः तब तक की सबसे विशाल जनसभा थी। जनसभा में शामिल प्रदर्शनकारियों ने विरोध अभियान चलाने के लिये 50 हजार रुपये एकत्र किये।

शीघ्र ही यह विरोध प्रदर्शन बंगाल से निकलकर भारत के अन्य भागों में भी फैल गया। पूना एवं बंबई में इस आंदोलन का नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक ने किया जबकि पंजाब में लाल लाजपत राय एवं अजीत सिंह ने, दिल्ली में सैय्यद हैदर रजा एवं मद्रास में चिदम्बरम पिल्लई ने इसे नेतृत्व प्रदान किया।

कांग्रेस की स्थितिः 1905 में गोपाल कृष्ण गोखले की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में निम्न दो प्रस्ताव पारित किये गये—(i) कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियों एवं बंगाल विभाजन की आलोचना करना तथा (ii) बंगाल में बंग-भंग विरोधी अभियान तथा स्वदेशी अभियान को समर्थन देना।

इस संबंध में उग्रवादी राष्ट्रवादी यथा-बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिनचंद्र पाल एवं अरविंद घोष का मत था कि विरोध अभियान का प्रसार बंगाल से बाहर पूरे देश में हो तथा इसे विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तक ही सीमित न रखकर पूर्ण स्वतंत्रता संघर्ष के रूप में चलाया जाये, जिससे पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। किंतु इस समय कांग्रेस में नरमपंथियों का प्रभुत्व था तथा वे इसे बंगाल के बाहर चलाये जाने के पक्ष में नहीं थे। 1906 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता में आयोजित किया गया। इस अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में कांग्रेस ने प्रस्ताव पारित किया कि कांग्रेस का लक्ष्य इंग्लैंड या अन्य उपनिवेशों की तरह 'स्वशासन या स्वराज्य' है। धीरे-धीरे उदारवादियों एवं उग्रवादियों में विभिन्न विषयों पर मतभेद निरंतर बढ़ते गये, जिसकी चरण परिणति 1907 के सूरत अधिवेशन में हुयी, जब कांग्रेस दो धड़ों में विभक्त हो गयी। इस विभाजन का स्वदेशी अभियान एवं अन्य तात्कालिक आंदोलनों पर गंभीर प्रभाव पड़ा।

उग्रवादी राष्ट्रवादियों की गतिविधियां

1905 के पश्चात बंगाल में चल रहे स्वदेशी आंदोलन में उग्र विचारध वाले नेताओं का प्रभुत्व स्थापित हो गया। इसके मुख्य तीन कारण

1. उदारवादियों के नेतृत्व में आंदोलन का कोई विशेष परिणाम निकला।

2. उदारवादियों के संवैधानिक रुख से उग्रवादी असहमत थे

3. सरकार ने अभियान को असफल बनाने हेतु कार्यकर्ताओं प्रारंभ कर दिया। इसके तहत विद्यार्थियों को प्रताड़ित किया गया, वं के गाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया, सार्वजनिक सभाओं पर प्रति दिया गया, स्वदेशी के कार्यकर्ताओं को दण्ड एवं कारावास दि गयी, अनेक स्थानों पर पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर लाठी चार्ज कि को निर्वासन की सजा दी गयी तथा प्रेस का दमन किया ग

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

कांग्रेस ने दिसम्बर 1906 में कलकत्ता में अपने वार्षिक अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी के नेतृत्व में स्वराज्य की प्राप्ति को अपना प्रमुख लक्ष्य घोषित किया। स्वराज्य का अर्थ वह शासन पद्धति समझा गया जो सभी स्वशासित उपनिवेशों में प्रचलित थी। राष्ट्रीय शिक्षा के प्रोत्साहन पर भी बल दिया गया। बंग-भंग को उग्र विचारधारा वाले राष्ट्रवादियों ने राष्ट्रीय चुनौती के रूप में स्वीकार किया। सारे बंगाल में जन सभायें हुयीं तथा तिलक, विपिनचंद्र पाल, लाला लाजपत राय तथा अरविंद घोष ने कई स्थानों पर सभाओं को संबोधित किया। इन सभाओं में लोगों ने स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की शपथ ली। इस शपथ को व्यवहारिक रूप देने हेतु एक सुनियोजित कार्यक्रम प्रारंभ किया गया तथा विदेशी वस्तुओं की दुकानों के समक्ष धरना दिया गया। कई स्थानों पर विदेशी वस्तुओं की सार्वजनिक रूप से होली जलायी गयी। स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार हेतु समितियां बनायी गयीं। नेताओं ने लोगों से स्कूलों, कालेजों, सरकारी कार्यालयों, सरकारी सेवाओं, न्यायालयों, व्यवस्थापिका सभाओं, नगर पालिकाओं एवं राजकीय उपाधियों इत्यादि का बहिष्कार करने की अपील की। इस अवसर पर अरविंद घोष ने कहा 'शासन संचालन को अवरुद्ध कर दो, ऐसे किसी भी कार्य या प्रयत्न से दूर रहो जिससे इंग्लैंड के व्यापार-वाणिज्य को लाभ पहुंचता हो तथा भारत का आर्थिक शोषण होता हो'। उन्होंने लोगों से आह्वान किया कि वे एकजुट होकर अंग्रेजी शासन-तंत्र को असफल बनाने हेतु आगे आयें। उग्र राष्ट्रवादियों ने बंग-भंग विरोधी आंदोलन तथा स्वदेशी अभियान को जन आंदोलन का स्वरूप देने का प्रयत्न किया तथा नारा दिया 'उपनिवेशी शासन से भारत को आजादी मिले'। अरविंद घोष ने स्पष्ट किया 'राजनीतिक स्वतंत्रता ही राष्ट्र की जीवन सांसें हैं'। इस प्रकार गरमपंथियों ने भारतीय स्वतंत्रता की अवधारणा को राष्ट्रीय राजनीति का मुख्य लक्ष्य बना दिया।

संघर्ष का नया स्वरूपः उग्र राष्ट्रवादियों ने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान संघर्ष को एक नया स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने विरोध कार्यक्रमों, विचारधाराओं एवं रूख को एक नये आयाम से जोड़ा। उन्होंने जुझारू राष्ट्रवाद का प्रचार किया तथा नरमपंथियों की अवधारणा को पूर्णतया नकार दिया। इस अभियान के तहत संघर्ष के जो विभिन्न तरीके अपनाये गये वे इस प्रकार थे—

विदेशी वस्तुओं का बहिष्कारः इसके अंतर्गत विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, विदेशी वस्तुओं की होली जलाना, विदेश में निर्मित नमक एवं चीनी का बहिष्कार, विदेशी वस्तुओं के प्रयोग वाले धार्मिक विवाह समारोहों का बहिष्कार करने हेतु ब्राह्मणों से अपील करना तथा धोबियों द्वारा विदेशी कपड़े धोने से इंकार करने का आग्रह करना जैसे कार्यक्रम शामिल थे। यह कार्यक्रम अत्यंत लोकप्रिय हुआ तथा इसे राजनीतिक स्तर पर अत्यंत सफलता मिली।

जनसभायें एवं विरोध प्रदर्शनः ये दोनों माध्यम इस अभियान के दौरान अत्यंत लोकप्रिय हुये तथा जनसंख्या के एक काफी बड़े हिस्से ने इनमें सक्रिय भागेदारी निभायी।

स्वयंसेवी संगठनों एवं समितियों का गठनः इस अभियान में समितियां एवं विभिन्न स्वयंसेवी संगठन, जन सहयोग की अत्यंत सशक्त एवं लोकप्रिय संस्थाओं के रूप में उभरे। बारीसल में अश्विनी कुमार दत्त की 'स्वदेशी बंधब समिति' इसी प्रकार की एक अत्यंत लोकप्रिय समिति थी। इन समितियों ने जन सामान्य में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया। समितियों द्वारा जागरण हेतु विभिन्न प्रकार के तरीके अपनाये जाते थे, जिनमें व्याख्यानों का आयोजन, स्वदेशी गीतों को गाना, कार्यकर्ताओं को नैतिक एवं शारीरिक सहायता, अकाल एवं महामारी जैसी प्राकृतिक आपदाओं के समय सामाजिक सेवा, खुले स्कूलों की स्थापना एवं स्वदेशी दस्तकारी हेतु प्रशिक्षण इत्यादि

परम्परागत एवं लोकप्रिय उत्सवों का जुझारू राष्ट्रवादी भावनाओं के प्रचार-प्रसार में उपयोगः उग्रवादी राष्ट्रवादियों ने विभिन्न परम्परागत एवं लोकप्रिय उत्सवों एवं मेलों का प्रयोग, जनाधार बढ़ाने एवं राजनीतिक चेतना के प्रचार-प्रसार में किया। उदाहरणार्थ-तिलक का गणपति उत्सव न केवल महाराष्ट्र अपितु बंगाल में भी स्वदेशी अभियान का माध्यम बन गया। बंगाल में परम्परागत लोक नाट्यशालाओं का इस अभियान को लोकप्रिय एवं सफल बनाने में किया गया।

आत्म विश्वास या आत्म-शक्ति की भावना पर बलः इस अभियान के प्रसार से राष्ट्रीय प्रतिष्ठा एवं विश्वास की भावना को बल मिला तथा सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्जन्म हुआ। इसके तहत विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रम एवं अभियान चलाये गये जिनमें जाति प्रथा का विरोध, मद्य निषेध इत्यादि प्रमुख थे। पर रोक, दहेज प्रथा का विरोध एवं मद्य निषेध इत्यादि प्रमुख थे।

स्वदेशी या राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रमः रवींद्रनाथ टैगोर के निकेतन से प्रेरणा लेकर कलकत्ता में नेशनल कालेज खोला गया तथा अरविंद घोष इसके प्रधानाचार्य नियुक्त किये गये। शीघ्र ही देश के कई अन्य भागों में नेशनल स्कूल एवं कालेजों की स्थापना की गयी। साहित्यिक, कलात्मक एवं तकनीकी शिक्षा को संगठित करने हेतु 15 अगस्त 1906 को नेशनल काउंसिल आफ एजुकेशन की स्थापना की गई जिससे देशवासियों में विज्ञान दृष्टिकोण विकसित किया जा सके। समाचार पत्रों के माध्यम से विज्ञान प्रचार को प्रोत्साहित किया गया। तकनीकी शिक्षा के विकास के लिये तकनीकी संस्थान' की स्थापना की गयी तथा मेधावी छात्रों को तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने हेतु जापान भेजने की व्यवस्था की गयी।

स्वदेशी एवं भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहनः स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन के कारण भारतीय उद्योगों को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। कपड़ा मिलें, साबुन और माचिस की फैक्ट्रियां, हस्तकरघा कारखाने एवं बीमा कम्पनियां खोली गयीं। आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय ने प्रसिद्ध बंगाल कैमिकल स्वदेशी स्टोर की स्थापना की। इस समय भारतीय व्यापारियों ने व्यावसायिक कारोबार की अपेक्षा देशभक्ति का उत्साह अधिक था।

सांस्कृतिक जगत का प्रभावः इस काल में महान राष्ट्रवादी कवि यथा-रवींद्रनाथ टैगोर, रजनीकांत सेन, द्विजेंद्रलाल राय, मुकुंद दास, अबू मोहम्मद इत्यादि ने अनेक राष्ट्रवादी कविताओं एवं गीतों की रचना की जिससे भारतीयों को अभूतपूर्व प्रेरणा मिली। इस अवसर पर रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा लिखित *अमार सोनार बांग्ला* नामक प्रसिद्ध गीत ने तो कालांतर में बांग्लादेश के स्वतंत्रता आंदोलन को अभूतपूर्व प्रेरणा दी तथा बांग्लादेश ने इसे राष्ट्रगान के रूप में अपनाया।

चित्रकला के क्षेत्र में रवींद्रनाथ टैगोर ने विक्टोरियन प्रकृतिवाद के वर्चस्व को तोड़ दिया तथा मुगल, अजन्ता एवं राजपूत काल की चित्रकला से प्रेरणा लेकर अनेक राष्ट्रवादी चित्रों का निर्माण किया। प्रसिद्ध मार्क्सवादी कला मर्मज्ञ नन्दलाल बोस ने भारतीय कला के प्रोत्साहन में महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा 1907 में स्थापित इंडियन सोसायटी आफ ओरिएंटल आर्ट की प्रथम छात्रवृत्ति पाने का गौरव हासिल किया।

विज्ञान के क्षेत्र में जगदीश चंद्र बोस, प्रफुल्लचंद्र राय एवं कई वैज्ञानिकों के अनेक महत्वपूर्ण अन्वेषण किये, जिनकी न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व में प्रशंसा की गयी।

क्रांतिकारी आतंकवाद

क्रांतिकारी आतंकवाद के उदय के मुख्यतः वही कारण थे, जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में उग्रवाद का जन्म हुआ था। अंतर केवल इतना था कि आतंकवादी अतिशीघ्र परिणाम चाहते थे। स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन के मंद पड़ने के पश्चात क्रांतिकारी आतंकवाद का और तेजी से विकास हुआ।

उदारवादियों के नेतृत्व में आंदोलन की असफलता के पश्चात राष्ट्रवादियों का मोह भंग हो गया। वे युवा, जिन्होंने इस आंदोलन में जोश कर हिस्सा लिया था, हताश हो गये तथा अपनी राष्ट्रवादी ऊर्जा की अभिव्यक्ति के लिये उपयुक्त मंच की तलाश करने लगे। उग्रवादियों का तेवर भी क्रांतिकारी आतंकवाद के उदय में सहायक रहे। इनके का

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...युवा राष्ट्रवादियों को प्रोत्साहन मिला। अतिवादियों ने हालांकि अपने ...में बड़ी संख्या में युवाओं को सम्मिलित किया तथा उन्हें त्याग करने ...की किंतु ये एक प्रभावी संगठन बनाने या तरुणों की क्रांतिवादी ...को स्वतंत्रता अभियान हेतु उपयोग करने में असफल रहे। अंततः ...स्वतंत्रता प्राप्ति के सभी तत्कालीन शासनों को अनुपयुक्त पाया ...निष्कर्ष निकाला कि यदि उपनिवेशी शासन को समाप्त करना है तो ...तरीके अपनाना आवश्यक है। उन्होंने यूरोपीय प्रशासकों की हत्या ...मनोबल कम करने, प्रशासन को ठप्प करने तथा स्वतंत्रता के ...संगठन तथा आयोज विरोधियों को समूल नष्ट करने का प्रयत्न किया। अपने ...की पूर्ति के लिये हत्या, डकैती, लूट इत्यादि सभी हिंसक गतिविधियों ...उन्होंने वैध माना।

...क्रांतिकारी आतंकवादियों के कार्यक्रम

...क्रांतिकारी आतंकवादियों ने निर्णय किया कि अंग्रेजी शासन को ...क्रांति के लिये सभी भारतीयों को हिंसक गतिविधियों में सहयोग करना ...करने के लिये एक राष्ट्रव्यापी हिंसक आंदोलन चलाया जाये तथा ...इसके लिये एक राष्ट्रवादियों एवं उसके समर्थकों का दमन किया जाये। क्रांतिकारियों ...राष्ट्रवादियों एवं आयरलैंड के आतंकवादियों से प्रेरणा ली। ...विप्लविस्टों में-व्यक्तिगत तौर पर हिंसक कार्य करना, ब्रिटिश ...सभी राष्ट्रवादियों के कार्यक्रमों एवं सहयोगियों की हत्या करना, डकैती डालकर ...आतंकवादियों उनके समर्थकों एवं सहयोगियों के लिये धन एकत्र करना तथा सरकार विरोधी लोगों ...क्रांतिकारी गतिविधियों के लिये षड़यंत्र करने जैसी गतिविधियां सम्मिलित थीं।

...क्रांतिकारी से सैनिक सहयोग से चाहते थे कि हिंसात्मक कार्यों के द्वारा शासकों को ...आतंकवादी भयभीत किया जाये तथा भारतीयों के इस भय को दूर किया जाये कि ...अंग्रेज शक्तिशाली एवं अजेय हैं। इन्होंने राष्ट्रवादी भावनाओं का प्रसार कर ...भारतीयों से उनके कार्यों में सहयोग देने की अपील की तथा युवाओं से इस ...कार्यों के लिये आगे का आह्वान किया क्योंकि बड़ी संख्या में अंग्रेजों ने तरुणों ...का दमन किया था। अतिवादी भी अपने कार्यों से आतंकवाद को रोकने में ...सफल नहीं हुये उल्टे उन्होंने इसके उदय में अप्रत्यक्ष रूप से उत्प्रेरक की ...भूमिका निभायी।

...क्रांतिकारी, वे प्रेरणा जिसे उदारवादी दल ने लोकप्रिय बनाया था तथा ...प्रभाव की नीति, जिसे उग्रवादियों ने अपनाया था, दोनों में विश्वास ...रखते थे। क्रांतिकारियों का मानना था कि साम्राज्यवादी शासन भारत ...नैतिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता, संस्कृति, सभ्यता एवं नैतिक मूल्यों ...सभी को विनष्ट कर देगा। इन क्रांतिकारियों का एकमात्र उद्देश्य ...को विदेशी दासता से मुक्त करना था।

...आतंकवादी गतिविधियां

...विश्व युद्ध के पश्चात् भारत एवं विदेशों में आतंकवादियों द्वारा ...भिन्न कार्यों को निम्न परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है—

...बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन का सूत्रपात भद्रलोक समाज ...तक कलकत्ता में छात्रों द्वारा अनेक गुप्त समितियों का गठन ...था, किंतु ये समितियां ज्यादा सक्रिय नहीं हो सकीं। बंगाल ...प्रथम गुप्त संगठन 'अनुशीलन समिति' था, जिसका गठन ...। मिदनापुर में ज्ञानेंद्रनाथ बसु ने इसकी स्थापना की, ...सका गठन पी. मित्रा ने किया। कलकत्ता की अनुशीलन ...बनर्जी एवं बरीन्द्र कुमार घोष जैसे प्रसिद्ध क्रांतिकारी ...अनुशीलन समिति की गतिविधियां, अपने अनुयायियों ...प्रशिक्षण देने तक ही सीमित रहीं तथा 1908 तक ...निष्क्रिय हो गयी। अप्रैल 1906 में अनुशीलन समिति ...मार घोष और भूपेंद्रनाथ दत्ता ने *युगांतर* नामक ...न प्रारंभ किया। इसी समय अनुशीलन समिति के ...ी गतिविधियां भी संपन्न कीं। 1905-06 तक ...न्य पत्र-पत्रिकाओं ने भी क्रांतिकारी विचारों के

प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, जिनमें *सध्या* का नाम प्रमुख है। किंतु बंगाल में क्रांतिकारी विचारधारा के प्रचार-प्रसार में सबसे प्रमुख कार्य युगांतर ने ही किया। उदाहरणार्थ-बैरिसल सम्मेलन के प्रतिनिधियों पर पुलिस द्वारा किये गये अत्याचारों का विरोध करते हुये युगांतर ने लिखा कि 'समस्या का समाधान लोगों द्वारा ही किया जा सकता है, भारत में निवास करने वाले 30 करोड़ लोगों के उपनिवेशी दमन एवं शोषण को रोकने हेतु 60 करोड हाथों का उपयोग करना चाहिए, ताकत को ताकत द्वारा ही रोका जा सकता है'। युगांतर के कुछ प्रमुख लेखों का संग्रह 'मुक्ति कौन पाथे' (मुक्ति किस मार्ग से) नामक पुस्तक में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में भारतीय सैनिकों से भारतीय क्रांतिकारियों को हथियार देने का आग्रह किया गया। रासबिहारी बोस एवं सचिन सन्याल ने दूरदराज के क्षेत्रों यथा पंजाब, दिल्ली एवं संयुक्त प्रांत में क्रांतिकारी आतंकवाद के विकास हेतु अनेक गुप्त समितियों का गठन किया, जबकि हेमचंद्र कानूनगो ने राजनीतिक एवं सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु विदेशों की यात्रा की। 1907 में *युगांतर* समूह के सदस्यों ने बंगाल के अलोकप्रिय लेफ्टिनेंट गवर्नर फुलर की हत्या का असफल प्रयास किया। मुख्य प्रेसीडेंसी दण्डनायक के रूप में किंग्सफोर्ड ने युवकों को छोटे-छोटे अपराधों के लिये बड़ी-बड़ी सजायें दी थीं। 30 अप्रैल 1908 को बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के न्यायाधीश श्री किंग्सफोर्ड की हत्या करने के उद्देश्य से खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने उनकी गाड़ी पर बम फेंका। लेकिन गलती से बम श्री कैनेडी की गाड़ी पर लग गया जिससे दो महिलायें मारी गयीं। इसके पश्चात प्रफुल्ल चाकी एवं खुदीराम बोस पकड़े गये। प्रफुल्ल चाकी ने आत्महत्या कर ली तथा खुदीराम बोस पर मुकदमा चलाकर उन्हें फांसी दे दी गयी। सरकार ने मानिकटोला उद्यान एवं कलकत्ता में अवैध हथियारों की तलाशी के लिये अनेक स्थानों पर छापे मारे तथा 34 व्यक्तियों को बंदी बनाया गया। इनमें दो घोष बंधु, अरविन्द तथा बरिन्द्र घोष भी शामिल थे। इन पर 'अलीपुर षड़यंत्र काण्ड' का अभियोग चलाया गया। मुकद्में के दिनों में पुलिस डिप्टी सुपरिटेंडेंट, सरकारी प्रॉसीक्यूटर तथा सरकारी गवाह नरेंद्र गोसांई की हत्या कर दी गयी। नरेंद्र गोसाईं की हत्या जेल में की गयी, 1909 में कलकत्ता में सरकारी प्रॉसीक्यूटर की हत्या कर दी गयी। 24 फरवरी, 1910 को उपपुलिस अधीक्षक की कलकत्ता उच्च न्यायालय से बाहर आते समय हत्या कर दी गई। पुलिन दास के नेतृत्व में ढाका अनुशीलन समिति के सदस्यों ने बारा में डकैती डाली।

तत्कालीन अनेक समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में क्रांतिकारियों की इन गतिविधियों की मुक्त कंठ से प्रसंशा की गयी। बंगाल में सन्धा एवं युगांतर तथा महाराष्ट्र में *काल* में क्रांतिकारियों के कार्यों को सही बताते हुये उनके समर्थन में अनेक लेख लिखे गये।

अंत में कहा जा सकता है कि क्रांतिकारी आतंकवाद, स्वदेशी आंदोल की असफलता के पश्चात उदय हुआ तथा इसने तत्कालीन युवा पीढ़ी राष्ट्रवाद की एक नयी भावना का संचार किया। किंतु धर्म पर अत्या बल देने के कारण मुसलमानों का समर्थन इसे नहीं मिला तथा मुस्लिम यु ने इसमें भाग नहीं लिया। आतंकवाद का सामाजिक आधार भी ज्यादा व नहीं था तथा बंगाल में उच्च वर्ग ने ही इसे सबसे ज्यादा समर्थन एवं स प्रदान किया। संकुचित सामाजिक आधार एवं व्यापक जनसहयोग वे में यह सरकारी दमन को बर्दाश्त नहीं कर सका तथा धीरे-धीरे अस्तित्व समाप्त हो गया।

महाराष्ट्रः 1918 की विद्रोह समिति की रिपोर्ट के अनुसार क्रांतिकारी आतंकवाद का प्रारंभ सर्वप्रथम महाराष्ट्र में ही क्रांतिकारी गतिविधियों का शुभारम्भ वासुदेव बलवंत फड़के के र *दल* ने 1879 में किया। इस दल ने सशस्त्र विद्रोह के जरिये दे को खदेड़ने की योजना बनायी। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये लाइनों को नष्ट कर सरकारी संचार सेवा को ठप्प करने का इन्होंने आतंकवादी गतिविधियों हेतु धन एकत्र करने के लि पर डकैतियां डालीं। किंतु 1890 में इसके पूर्ण विकास से

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

ने बर्बरतापूर्वक इसका दमन कर दिया। बाल गंगाधर तिलक ने महाराष्ट्र के लोगों में स्वराज्य के प्रति प्यार और अंग्रेज विरोधी भावनाओं को जगाने के लिये गणपति त्योहार और शिवाजी त्योहार मनाया तथा अपने समाचार-पत्रों मराठा एवं केसरी में अनेक लेख लिखे। तिलक के दो शिष्यों दामोदर चापेकर एवं बालकृष्ण चापेकर ने 1897 में पूना में प्लेग समिति के प्रधान श्री रैण्ड एवं लैफ्टिनेंट एयर्स्ट की हत्या कर दी। बाद में चापेकर बन्धु पकड़े गये तथा उन्हें फांसी की सजा दी गयी। विनायक दामोदर सावरकर ने एवं उनके भाई गणेश दामोदर सावरकर ने 1899 में एक गुप्त सभा 'मित्र मेला' का गठन किया, (मैजिनी की तरुण इटली की तर्ज पर) जिससे 1904 में 'अभिनव भारत' की स्थापना हुयी। शीघ्र ही बम्बई, पूना एवं नासिक बम बनाने वाले केंद्रों के रूप में उभरे। 1909 में नासिक के जिला मजिस्ट्रेट जैक्सन की अभिनव भारत के एक सदस्य अनन्त कान्हेरे ने हत्या कर दी।

पंजाबः पंजाब में क्रांतिकारी आतंकवाद के उदय में अनेक तत्वों ने सम्मिलित भूमिका निभायी। इनमें लगातार दो अकालों के बावजूद भू-राजस्व एवं सिंचाई करों में अत्यधिक वृद्धि, जमींदारों द्वारा आरोपित बेगार प्रथा एवं बंगाल की घटनायें प्रमुख हैं। इसके साथ ही लाला लाजपत राय एवं भगत सिंह के चाचा अजीत सिंह ने भी पंजाब में क्रांतिकारी आतंकवाद के उदय में महत्वपूर्ण योगदान दिया। लाला लाजपत राय ने अपने समाचार पत्र पंजाबी के माध्यम से पंजाब के लोगों को किसी भी स्थिति में स्वयं के प्रयासों द्वारा उत्पीड़न का विरोध करने हेतु प्रोत्साहित किया। जबकि अजीत सिंह ने लाहौर में 'अन्जुमन-ए-मोहिसबान-ए-वतन' नामक क्रांतिकारी समिति का गठन किया तथा भारत माता नामक पत्र का प्रकाशन किया। अजीत सिंह ने भारत माता में अनेक क्रांतिकारी लेख लिखे तथा लोगों से दमन एवं उत्पीड़न का विरोध करने हेतु आगे आने का आह्वान किया। प्रारम्भ में अजीत सिंह एवं उनके समर्थकों ने चिनाब तथा बारी-दोआब नहरी क्षेत्रों के किसानों पर लगाये गये भारी भूमि-राजस्व को वापस लेने हेतु अभियान चलाया किंतु बाद में उनका रुझान आतंकवादी गतिविधियों की ओर हो गया। लाला लाजपत राय एवं अजीत सिंह के अतिरिक्त आगा हैदर, सैय्यद हैदर रजा, भाई परमानंद एवं प्रसिद्ध उर्दू कवि लालचंद 'फलक' ने भी पंजाब में क्रांतिकारी आतंकवाद के उदय एवं प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

पंजाब में क्रांतिकारी आतंकवाद के प्रारम्भ होते ही सरकार ने इसके दमन के प्रयास शुरू कर दिये तथा मई 1907 में एक कानून बनाकर राजनीतिक सभाओं एवं समितियों पर प्रतिबंध लगा दिया। लाला लाजपत राय को बंदी बनाकर जेल में डाल दिया गया तथा अजीत सिंह देश से निर्वासित कर दिये गये। अजित सिंह के निर्वासन के पश्चात फ्रांस चले गये लेकिन इसके पश्चात भी उन्होंने अपने सहयोगियों यथा—सूफी अम्बा प्रसाद, भाई परमानंद एवं लाला हरदयाल इत्यादि के सहयोग से क्रांतिकारी आतंकवाद को जारी रखा।

दिल्लीः दिल्ली में क्रांतिकारी गतिविधियों की स्पष्ट अभिव्यक्ति तब हुयी जब क्रांतिकारियों ने 23 दिसम्बर 1912 को वायसराय लार्ड हार्डिंग के काफिले पर बम फेंका। इस बम हमले में हार्डिंग के कई सेवक मारे गये था वे बुरी तरह घायल हो गये। इस घटना में रासबिहारी बोस तथा सचिन याल की मुख्य भूमिका थी। घटना के पश्चात पुलिस ने तेरह व्यक्तियों गिरफ्तार किया, जिनमें मास्टर अमीरचंद्र, अवध बिहारी, दीनानाथ, न चंद्र, हनुमंत सहाय, बसंत कुमार, बाल मुकुंद एवं बलराज इत्यादि थे। इन सभी पर 'दिल्ली षड़यंत्र केस' के नाम से मुकदमा चलाया नमें से कुछ को फांसी दी गयी तथा शेष को देश से निर्वासित कर ।

ी आतंकवादियों की विदेशों में गतिविधियां

वादियों ने भारत के अलावा विदेशों में भी कई स्थानों पर तंकवाद को जारी रखा। इनमें से कुछ स्थान/देश निम्नानुसार

ंदन में क्रांतिकारी आतंकवाद का नेतृत्व मुख्यतया श्यामाजी दामोदर सावरकर, मदनलाल ढींगरा एवं लाला हरदयाल

ने किया। श्यामाजी कृष्णवर्मा ने 1905 में यही 'भारत स्वाधीनता स्थापना की, जिसे 'इण्डिया हाउस' के नाम से जाना जाता था। इसका उद्देश्य अंग्रेज सरकार को आतंकित कर स्वराज्य प्राप्त करना था। से एक समाचार पत्र *सोशियोलाजिक* का प्रकाशन भी प्रारंभ किया। से सरकारी दमन के कारण श्यामाजी पेरिस तथा अंततः जिनेवा चले गये। श्यामाजी कृष्ण वर्मा के पश्चात इण्डिया हाउस का कार्यभार विनायक दामोदर सावरकर ने संभाला। यहीं सावरकर ने '1857 का स्वतंत्रता संग्राम' प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। उन्होंने मैजिनी की आत्मकथा का मराठी में अनुवाद भी किया। 1909 में मदनलाल ढींगरा ने कर्नल विलियम कर्जन वाइली की हत्या कर दी। ढींगरा को भी गिरफ्तार कर फांसी पर चढ़ा दिया गया। मार्च 1910 को नासिक षड़यंत्र केस में सावरकर को भी गिरफ्तार कर लिया गया तथा उन्हें काले पानी की सजा दी गयी।

फ्रांसः यहां श्री एस.आर. राणा एवं श्रीमती भीकाजी रुस्तम कामा ने पेरिस से आतंकवादी गतिविधियों को जारी रखा। 1906 में श्यामाजी कृष्णवर्मा भी लंदन से यहां पहुंच गये जिससे इनकी गतिविधियां और तेज हो गयीं। इन्होंने यहां *बंदेमातरम* नामक समाचार पत्र निकालने का प्रयास भी किया। यहां एस.आर. राणा ने भारतीय छात्रों हेतु छात्रवृत्तियां प्रारंभ की लेकिन विश्व युद्ध के समय फ्रांस एवं इंग्लैंड में मित्रता हो जाने के कारण क्रांतिकारियों की गतिविधियां धीमी पड़ गयीं।

अमेरिका तथा कनाडाः संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा में क्रांतिकारी आंदोलन का नेतृत्व लाला हरदयाल ने किया। 1 नवंबर 1913 को लाला हरदयाल ने सैन फ्रैंसिस्को में 'गदर पार्टी' की स्थापना की। यह के अनेक भागों में इसकी शाखायें खोली गयीं। गदर दल ने 1857 के विद्रोह की स्मृति में *गदर* नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारंभ किया।

जर्मनीः प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ होने पर इंग्लैण्ड तथा जर्मनी के बीच तनावपूर्ण हो गये, फलतः क्रांतिकारियों ने जर्मनी को अपनी गतिविधियों का केंद्र बना लिया। लाला हरदयाल तथा उनके साथी अमेरिका से जर्मनी चले गये। वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय ने बर्लिन को अपनी गतिविधियों का केंद्र बना लिया।

कांग्रेस का सूरत विभाजन (1907)

स्वतंत्रता आंदोलन के प्रथम चरण में जबकि क्रांतिकारी आतंकवाद धीरे-धीरे गति पकड़ रहा था, दिसम्बर 1907 में कांग्रेस का सूरत विभाजन हुआ। इसका प्रमुख कारण कांग्रेस में दो विपरीत विचाराधाराओं का उदय था।

1905 में जब कांग्रेस का अधिवेशन गोपाल कृष्ण गोखले की अध्यक्षता में बनारस में संपन्न हुआ तो उदारवादियों एवं उग्रवादियों के मतभेद खुलकर सामने आ गये। इस अधिवेशन में बाल गंगाधर तिलक ने नरमपंथियों की ब्रिटिश सरकार के प्रति उदार एवं सहयोग की नीति की कटु आलोचना की। तिलक की मंशा थी कि स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन का पूरे भारत तथा देश के अन्य भागों में तेजी से विस्तार किया जाये, तथा इसे सभी संस्थाओं (यथा—सरकारी सेवाओं, न्यायालयों, व्यवस्थापिका आदि इत्यादि) को सम्मिलित कर इसे राष्ट्रव्यापी आंदोलन का स्वरूप दिया जाये जबकि उदारवादी इस आंदोलन को केवल बंगाल तक ही सीमित रखना चाहते थे तथा अन्य संस्थाओं को इस आंदोलन में सम्मिलित करने के पक्ष में नहीं थे। उग्रवादी चाहते थे कि बनारस अधिवेशन में उनके प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाये जबकि उदारवादियों का प्रस्ताव था कि बंगाल विभाजन का विरोध संवैधानिक तरीके से किया जाये तथा ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग करने की नीति का समर्थन न किया जाये। अंततः बीच का रास्ता निकालते हुये एक मध्यमार्गी प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियों तथा बंगाल विभाजन की आलोचना की गयी तथा स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन का समर्थन किया गया। इससे कुछ समय के लिये कांग्रेस का विभाजन टल गया।

दिसम्बर 1906 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन क

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

के लिये पांच नये कानून बनाये गये। इन कानूनों में राजद्रोही सभा अधिनियम 1907, भारतीय समाचार पत्र अधिनियम 1908, फौजदारी कानून (संशोधित) अधिनियम 1908 तथा भारतीय प्रेस अधिनियम 1910 प्रमुख थे। मुख्य अतिवादी नेता बालगंगाधर तिलक को गिरफ्तार कर मंडेला जेल (बर्मा) भेज दिया गया। इसी समय विपिनचंद्र पाल तथा अरविंद घोष ने सक्रिय राजनीति से सन्यास ले लिया तथा लाला लाजपत राय विदेश चले गये। अतिवादी आंदोलन को आगे जारी रखने में असफल रहे। उदारवादियों की लोकप्रियता भी कम हो गयी तथा वे युवाओं का सहयोग या समर्थन प्राप्त करने में नाकाम रहे।

1908 के पश्चात कुछ समय के लिये राष्ट्रीय आंदोलन का उन्माद ठंडा पड़ गया। इसमें दुबारा तेजी तब आयी जब 1914 में तिलक जेल से रिहा हुये।

भारतीय राष्ट्रवादी एवं प्रथम विश्व युद्ध

प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) प्रारंभ के समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उदारवादी दल के नेतृत्व में थी। कांग्रेस ने अंग्रेजों के युद्ध प्रयत्नों में सहायता देने को, एक कर्त्तव्य तथा सौदा करने की भावना से समर्थन दिया। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे जो कि यह समझते थे कि कोई रियासतें नहीं मिलेंगी जब तक कि सरकार पर लोकप्रिय दबाव नहीं डाला जाएगा।

गदर-आन्दोलन

बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशक में पंजाब से बड़ी संख्या में भारतीय उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी सागरतट पर बेहतर एवं सुखी जीवन की अपेक्षाओं के साथ बसने लगे थे। परन्तु, इनका सपना झूठा सिद्ध हुआ और इन्हें गोरों के भेदभावपूर्ण कानूनों एवं अन्य तरीकों से दबाया जाने लगा। 1908 में कनाडा में भारतीयों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध भी लगा दिया गया। अँग्रेजी हुकूमत के तरफदार अमेरिकी देशों के सौतेले व्यवहार से भारतीय क्षुब्ध हुए और उनमें विद्रोह की भावना पनपने लगी।

कनाडा और अमेरिका में भारतीयों के लगातार संघर्षों ने प्रवासी भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जगाई और उन्हें एकताबद्ध किया। भारतीयों के खिलाफ विदेशों के कड़े अप्रवासी कानूनों को बदलवाने के लिए इन्हों प्रतिनिधिमंडलों के माध्यम से ब्रिटिश एवं भारतीय सरकार की मदद चा पर ये सरकारें राजी नहीं हुईं। इससे भारतीय और भी क्षुब्ध हुए और सीधे अँग्रेजी हुकूमत के खिलाफ आजादी की लड़ाई की जमीन तैयार लगी।

अमेरिका इन गतिविधियों का केन्द्र बना और लाला हरदयाल नेता। नवम्बर, 1913 से 'गदर' नामक साप्ताहिक पत्र निकलना शु जिसमें अँग्रेजी सरकार की गलत नीतियों की तथ्यपरक आलोचना सीधी कार्रवाई का आह्वान होता था। गरमपंथी नेताओं के आले थे, क्रांतिकारी कविताएं छपती थीं। भारतीयों एवं विश्व भर के प्रवास में बहुत जल्द यह अत्यन्त लोकप्रिय हो गया।

गदर-आन्दोलन को तीन महत्त्वपूर्ण घटनाओं ने 1914 में मोड़ दिया। सबसे पहले लाला हरदयाल की गिरफ़्तारी हुई, इसने गदर क्रांतिकारियों को बहुत आन्दोलित किया। फिर जहाज प्रकरण' हुआ, जिसकी परिणति जहाज की कनाडा से व वहाँ संघर्ष और 18 यात्रियों की मृत्यु तथा 202 को जेल इन असंतोषों के बीच ही प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया। गद ने इस अवसर का फायदा उठाना चाहा और उन्होंने भारतीयों से भारत लौटकर सशस्त्र विद्रोह छेड़ने का

सरकार ने इन भारतीयों का क्रूरतापूर्वक दम भारतीय पंजाब पहुँचने में सफल भी हुए, उन्हें निराश की जनता ने उनका साथ नहीं दिया। अँग्रेजी हु खालसा दीवान ने इन क्रांतिकारियों को पतित व अप और दमन में हुकूमत का पूरा साथ दिया।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

अब गदर क्रांतिकारियों ने बंगाल के मशहूर क्रांतिकारी रासबिहारी बोस के नेतृत्व में भारतीय सैनिकों को विद्रोह के लिए तैयार करने की कोशिश की। पर, सरकार को षड्यंत्र का पता चल गया और अधिकांश गदर-नेता गिरफ्तार कर लिए गए। 42 लोगों को फाँसी दी गई और 200 को लम्बी सजा।

उपलब्धियाँ: गदर-आन्दोलन की सबसे बड़ी सफलता यह रही कि इसने उपनिवेशवाद के खिलाफ वैचारिक संघर्ष छेड़ा। शुरूआती दौर में गदर अखबार ने, राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा अँग्रेजी सत्ता के औपनिवेशिक चरित्र का जो विश्लेषण किया गया था, उसका भारतीय अप्रवासी जनसमूह एवं सतर्क धर्मनिरपेक्ष प्रसार किया। फिर, इस आन्दोलन का चरित्र नितान्त एवं सख्त धर्मनिरपेक्ष था, यद्यपि इसके अधिकांश नेता व कार्यकर्त्ता सिख थे। इनमें किसी तरह की क्षेत्रीय भावना भी नहीं थी। आंदोलनकारियों ने पंजाबियों का समर्थन जुटाने के लिए कभी भी सिखों या धर्मगुरूओं का गुणगान नहीं किया, उल्टे उन्होंने 1857 के विद्रोह के दौरान पंजाबियों द्वारा अँग्रेजी हुकूमत के प्रति वफादारी जताने की निन्दा की।

गदर आंदोलनकारी विचारधारा की दूसरी विशेषता थी—इसका लोकतान्त्रिक व समतावादी चरित्र। अनेक गदर क्रांतिकारी आनेवाले वर्षों में किसान नेता व कम्युनिस्ट बन गए।

लाला हरदयाल के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों को एक अन्तरराष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाने की भी प्रेरण मिली। उनके भाषणों और लेखों में आयरलैण्ड, मैक्सिको और रूसी क्रांतिकारियों की जो तस्वीर थी।

इस तरह, गदर आन्दोलनकारियों की जो तस्वीर थी। किसी में बनी, वह धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, समतावादी समाज के लिए लड़नेवाले व अन्तरराष्ट्रीय समझ रखनेवाले देशभक्त योद्धाओं की तस्वीर थी।

खामियाँ: गदर आन्दोलन की अपनी कुछ खामियाँ भी थीं। किसी सशस्त्र विद्रोह के लिए जिस तैयारी, आर्थिक आधार एवं संगठन तथा रणनीति की अपेक्षा होती है, उसका ठीक-ठीक अनुमान आन्दोलनकारी नहीं लगा सके और शक्तिशाली अँग्रेजी सत्ता से लड़ गए। फिर, गदर आंदोलन ने किसी ऐसे नेतृत्व को भी जन्म नहीं दिया, जो इसे निरंतरता प्रदान करता और विभिन्न पहलुओं में समन्वय स्थापित करता।

महत्त्व: प्रभावी नेतृत्व और मजबूत संगठन के अभाव में यह आन्दोलन तो खत्म हुआ ही, साथ ही हिन्दुस्तान के क्रान्तिकारियों की एक पीढ़ी भी खत्म हो गई। हिन्दुस्तान के लिए एक अपूरणीय क्षति हुई। 1914.15 के इस गदर आंदोलन में धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय नेतृत्व की हत्या कर दी गई—उस नेतृत्व की, जो यदि बाद के वर्षों में जिन्दा रहता, तो पंजाब की राजनीति को एक नया मोड़ देता। समूचे राज्य को एक धर्मनिरपेक्ष चरित्र देता और उस साम्प्रदायिकता को कभी पनपने न देता, जो बाद के वर्षों में पनपी।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारत में होने वाली क्रांतिकारी घटनायें

इस काल में भारत में होने वाली विभिन्न क्रांतिकारी गतिविधियों के केंद्र मुख्यतया पंजाब एवं बंगाल रहे। बंगाल में होने वाली विभिन्न घटनाओं में रासबिहारी बोस एवं सचिन सान्याल की मुख्य भूमिका रही। इन दोनों क्रांतिकारियों ने पंजाब लौटे गदर दल के नेताओं के सहयोग से अनेक क्रांतिकारी कार्य किये। अगस्त 1914 में बंगाल के क्रांतिकारियों ने कलकत्ता के रोड्डा फर्म (Rodda Firm) के कर्मचारियों की सहानुभूति से इसे लूट लिया तथा 50 माउजर पिस्तौलें एवं लगभग 46 हजार राउंड गोलियां लेकर भाग निकले। बंगाल के एक अन्य प्रमुख क्रांतिकारी नेता जतिन मुखर्जी थे जिनके नेतृत्व में बंगाल के क्रांतिकारी आतंकवादियों ने विभिन्न स्थानों पर आतंकवादी कार्य किये। इनमें रेलवे पटरियों को उखाड़ना, कोर्ट विलियम किले का घेराव तथा जर्मन हथियारों को वितरित करना इत्यादि सम्मिलित थे। किन्तु कमजोर संगठन एवं संयोजन के अभाव में क्रांतिकारियों के अधिकांश प्रयास विफल हो गये। सितम्बर 1915 में उड़ीसा तट पर स्थित बालासोर नामक स्थान पर बाघा (जतिन मुखर्जी) पुलिस के साथ [illegible] शहीदों की तरह मारे गये।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् इस क्रांतिकारी गतिविधियों में [illegible] के लिये थोड़ा विराम आया, जब सरकार ने भारत रक्षा अधिनियम [illegible] के तहत पकड़ गये राजनीतिक बंदियों को छोड़ दिया। [illegible] माउंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार 1919 लागू करने से अनुरंजक वातावरण [illegible] गया। इसके अतिरिक्त इसी समय भारतीय राजनीति में गांधीजी [illegible] राष्ट्रीय नेता के रूप में आगे आये। उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए [illegible] का सिद्धांत रखा। इन सभी कारणों से देश में क्रांतिकारी गतिविधियों [illegible] धीमापन आ गया।

होमरूल लीग आंदोलन

स्थापना: 20वीं शताब्दी के आरम्भ में आयरलैण्ड के लोगों ने [illegible] देश की स्वाधीनता के लिए होमरूल-आन्दोलन (स्वराज्य -आन्दोलन) [illegible] था। उसी के आधार पर भारत में भी होमरूल लीग आन्दोलन [illegible] निर्णय लिया गया। इस राष्ट्रीय आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया बालगंगाधर तिलक ने [illegible] तिलक और एनी बेसेण्ट ने। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने मंडाले [illegible] से रिहा होने के बाद 1916 में महाराष्ट्र में भारतीय होमरूल लीग की स्थापना [illegible] की। इसी वर्ष एनी बेसेण्ट ने मद्रास में इण्डियन होमरूल [illegible] की स्थापना [illegible] की।

कॉंग्रेस के दिसम्बर, 1914 के अधिवेशन में उग्रवादी कॉंग्रेसियों [illegible] फिर से प्रवेश नहीं मिल पाया, परन्तु 1915 में तिलक और एनी बेसेण्ट [illegible] प्रयत्नों के कारण उग्रवादियों को कॉंग्रेस में प्रवेश मिल गया। 1916 [illegible] कॉंग्रेस स्थानीय स्तर की समितियों को दुबारा शुरू नहीं कर पायी और [illegible] को शिक्षित करने की योजना पर भी अमल नहीं कर सकी। कॉंग्रेस [illegible] नरमरुख को देखते हुए तिलक और एनी बेसेण्ट ने अपने-अपने होमरूल [illegible] लीग शुरू कर दिए। तिलक और एनी बेसेण्ट ने अपनी-अपनी लीग का [illegible] कार्य-क्षेत्र अलग-अलग बाँट लिया था। तिलक की लीग का कार्यक्षेत्र [illegible] महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश और बरार था, जबकि एनी बेसेण्ट का कार्यक्षेत्र [illegible] शेष भारत था।

उद्देश्य: होमरूल लीग की स्थापना का उद्देश्य देश में राष्ट्रीय राजनीतिक आन्दोलन फिर से शुरू करना, भारत में स्वशासन की स्थापना [illegible] की माँग तेज करना, स्थानीय स्तर पर कॉंग्रेस समितियों को पुनर्जीवित करना [illegible] क्षेत्रीय भाषा और शिक्षा पर बल देना, जिससे 'स्वराज' की माँग क्षेत्रीय-स्तर [illegible] पर प्रभावी बनती। अधिकतम लोगों को कॉंग्रेस की सदस्यता प्रदान करना [illegible] तथा विशुद्ध रूप से विचार विमर्श के एक मंच के रूप में कॉंग्रेस की छवि [illegible] को बदलना और किसी भी लगातार आंदोलन के लिए तैयार करना था।

1907 के कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस के दो गुट [illegible] गये—उदारवादी और उग्रवादी। तिलक के जेल चले जाने और उदारवादियों [illegible] के अंगरेज समर्थक रुख के कारण कॉंग्रेस लगभग मृतप्राय हो चुकी थी। [illegible] अंग्रेजी हुकूमत ने कांग्रेस के विभाजन का खूब लाभ उठाया था। वह [illegible] उदारवादियों का प्रयोग उग्रवादियों को दबाने में कर रही थी और उग्रवादी [illegible] उदारवादियों से इसलिए नाराज थे कि उन्हें लग रहा था कि उदारवादी [illegible] अंग्रेजी हुकूमत का साथ दे रहे हैं और देश की जनता के साथ धोखा कर [illegible] रहे हैं।

तिलक मांडला (बर्मा) में 6 वर्ष की कैद की सजा भुगतने के बाद भारत [illegible] लौटे, तो उन्होंने सबसे पहले अपना ध्यान स्वयं तथा उग्रवादियों को कॉंग्रेस [illegible] में फिर से वापस करने पर लगाया, क्योंकि जेल में रहते हुए उन्होंने यह [illegible] अनुभव किया था कि गरमपंथियों और उदारपंथियों की लड़ाई का पूरा-पूरा [illegible] लाभ अंग्रेज उठा रहे हैं—कॉंग्रेस के विभाजन से देश की स्वाधीनता का [illegible] आन्दोलन अपना जोश खो रहा है। तिलक को 1915 में जाकर सफलता [illegible] मिली, जब गरमपंथियों की कॉंग्रेस में फिर से वापसी हो गयी। कांग्रेस में [illegible] वापसी के बाद तिलक राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में फिर से प्राण फूँकने [illegible] के लिए प्रयत्नरत हो गए और उन्होंने होमरूल लीग की स्थापना की [illegible]

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

कार्य-शैली: तिलक और एनी बेसेण्ट दोनों के होमरूल लीग की कार्य-शैली बहुत ही अच्छी थी। इन लोगों ने नगरों में संवाद-गोष्ठियों का आयोजन किया तथा वाचनालयों की स्थापना की। संवाद-गोष्ठियों में अधिक लोगों की सहभागिता का आह्वान किया जाता था और गोष्ठियों में राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर के चर्चित विषयों पर विचार-विमर्श किया जाता था और वाचनालयों में राष्ट्रीय पत्रिकाएँ रखी जाती थीं। इसका उद्देश्य यह था कि जनता में देशभक्ति की भावना का विकास हो। इन गोष्ठियों के माध्यम से बड़े स्तरों पर पर्चों में स्वाधीनता-आन्दोलन के लिए चलाए जाने वाले कार्यक्रमों और अँगरेजी सरकार की दोषपूर्ण नीतियों का विवरण छपा होता था। लीग के कार्यकर्त्ता व्याख्यानों के लिए दौरे किया करते थे। वे स्वराज आन्दोलन में सक्रिय सहभागिता के लिए जनता को आगे बढ़ने के लिए समय-समय पर विभिन्न क्षेत्रों का दौरा किया करते थे और भाषण दिया करते थे।

तिलक का होमरूल लीग आन्दोलन: तिलक ने एनीबेसेण्ट के पूर्व ही अप्रैल, 1916 में अपने होमरूल लीग की स्थापना कर ली। तिलक के द्वारा अप्रैल, 1916 में बेलगाम में हुई बंबई की क्षेत्रीय कान्फ्रेंस में शुरू किया गया था। महाराष्ट्र में होमरूल लीग की स्थापना के पीछे यह भी तर्क दिया जाता है कि तिलक महाराष्ट्र में अपना आधार बनाए रखना चाहते थे। तिलक की लीग को छह शाखाओं में संगठित किया गया था। इन छह शाखाओं में महाराष्ट्र, बंबई शहर, कर्नाटक और मध्यप्रदेश में एक-एक तथा बरार में दो शाखाएँ थीं। तिलक की लीग ने मराठी में 6 और अँग्रेजी में पर्चे जारी किए, जिनकी 47,000 प्रतियाँ बिकीं। पर्चा कन्नड और गुजराती में भी निकाला गया। तिलक की लीग को आधार प्रदान किया तिलक के महाराष्ट्र दौरे ने, जिसमें उन्होंने भाषण दिए और होमरूल की माँग के संबंध में जानकारियाँ दीं। तिलक का आन्दोलन धीरे-धीरे विकसित होने लगा और एवं अँग्रेजी हुकूमत ने यह देखा कि यह लीग उनके लिए सरदर्द साबित हो सकता है, तब उसने तिलक से 60,000 रुपये 'सुरक्षा राशि' के रूप में जमा कराने के लिए कहा। ऐसा न करने पर एक वर्ष के लिए 'सद्व्यवहार' रोक लगाने की धमकी दी गई। इस मुद्दे को लेकर 1916 में उच्चतम न्यायालय ने तिलक को बरी कर दिया और तिलक ने यह प्रचार किया कि होमरूल लीग को अब वैधानिक मान्यता मिल गयी है। अप्रैल, 1917 तक तिलक की लीग के सदस्यों की संख्या 14,000 हो गई थी। तिलक की लीग महाराष्ट्र और कर्नाटक तक सीमित रही। तिलक की होमरूल लीग के संबंध में कहा जाता है कि वह ब्राह्मणवादी आंदोलन था। पर, ऐसा कहना बिल्कुल अनुचित है, क्योंकि उनकी लीग में गैरब्राह्मण व्यापारी तथा मराठों और गूर्जरों की भी पर्याप्त भागीदारी थी। उनकी लीग पर दोषारोपण करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि तिलक ने खुद ही कहा था "अगर भगवान् भी छुआछूत को मानता है, तो उसे भगवान् नहीं मानूँगा।" तिलक ने 'मराठा' पत्र के माध्यम से अपने लीग का प्रचार किया।

एनीबेसेण्ट का लीग-आन्दोलन: एनीबेसेण्ट एक आयरिश महिला थीं और आयरलैण्ड की भाँति ही भारत में होमरूल-लीग-आन्दोलन को चलाना चाहती थीं। वे पहले से ही 'थियोसोफिकल सोसायटी' के माध्यम से भारत में अपना प्रभाव जमा चुकी थीं और 1907 से 1915 के बीच कांग्रेस में भी वर्चस्व स्थापित हो चुका था। 1915 में उग्रवादियों को कांग्रेस में प्रवेश में भी एनी बेसेण्ट की उल्लेखनीय भूमिका थी। एनीबेसेण्ट ने सितम्बर, लीग योजना की घोषणा की तथा न्यू इण्डिया और कॉमनवील पत्रों ी लीग का कार्य आरंभ किया। एनीबेसेण्ट का लीग पुराने ल सोसायटी के संपर्कों पर ही आधारित था। बेसेण्ट का ास शहर (अड़यार) एवं मुफस्सिल कस्बों के तमिल ब्राह्मण, ल हिन्दू अल्पसंख्यक इत्यादि वर्गों में विशेष रूप से लोकप्रिय योसॉफी ने किञ्चित् समाज-सुधार के साथ-साथ प्राचीन हिन्दू के साथ-साथ प्राचीन हिन्दू ज्ञान एवं वैभव के सिद्धान्त का

मेल कर दिया था। साथ ही, इन क्षेत्रों में राजनीतिक शून्यता की सी स्थिति थी। अड्यार में एनीबेसेण्ट के प्रमुख सहयोगी थे—अरुण्डेल, सी पी. रामास्वामी अय्यर तथा बी. पी. वाडिया। इस लीग में इलाहाबाद से जवाहरलाल नेहरू, कलकत्ता से बी. चक्रवर्ती तथा जे बनर्जी भी शामिल हुए थे।

एनीबेसेण्ट की होमरूल लीग उदारवादी कांग्रेसियों का सहयोग प्राप्त करने में भी सफल हुई। उदारवादी कांग्रेस के कुछ सदस्य कांग्रेस की गतिविधियों से असंतुष्ट थे। गोखले के 'सर्वेण्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी' ने भी एनीबेसेण्ट की लीग को सक्रिय सहयोग दिया। एनी बेसेण्ट की लीग के आन्दोलन का स्वरूप अधिक अखिल भारतीय था। उनके आन्दोलन से राष्ट्रवादी गतिविधियों का विस्तार नए क्षेत्रों, नए समूहों और एक प्रकार की नई पीढी तक हुआ। एनीबेसेण्ट की लीग में अधिकांशतः उन समुदायों के शिक्षित व्यक्ति शामिल हुए थे, जिनमें अभी तक सांस्कृतिक पुनर्जागरण नहीं हुआ था। तिलक की लीग की अपेक्षा बेसेण्ट की लीग का संगठन ढीला था। एनी बेसेण्ट की लीग में यह व्यवस्था थी कि कोई भी तीन व्यक्ति मिलकर कहीं भी शाखा खोल सकते थे।

उपलब्धियाँ एवं आगामी राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका: होमरूल लीग आन्दोलन ने जिन युवा लोगों को प्रभावित किया, उनमें उनके भारतीय राजनीति के कर्णधार थे—पंडित जवाहरलाल नेहरू, सेठ जमनादास द्वारकादास, इंदुलाल याज्ञिक आदि। लीग के नेताओं ने ट्रेड यूनियन गतिविधियों को चलाने का प्रयत्न किया, यथा वी.पी. वाडिया ने मद्रास में। इस आन्दोलन ने उत्तरप्रदेश, गुजरात, सिन्ध, मद्रास, मध्यप्रांत तथा बरार-सदृश अनेक नए क्षेत्रों को राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल किया। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद भारत की स्वाधीनता के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई के लिए इस आन्दोलन ने युवाओं की एक नई पीढी बनाई। इस आन्दोलन की सफलता को देखते हुए अँग्रेजी हुकूमत ने भी अपनी नीति में परिवर्त्तन किया। अब वे भारतीयों की स्वराज-संबंधी माँग की अनदेखी करने से डरने लगे।

होमरूल लीगों का पतन: होमरूल लीग आन्दोलन की सफलताओं से अँग्रेजी सरकार के मन में भय-सा उत्पन्न हो गया। सरकार ने इस आन्दोलन के दमन का फैसला किया। सरकार ने एनी बेसेण्ट और बाल गंगाधर तिलक के कार्यकलापों पर विशेष ध्यान देना शुरू किया। सरकार ने तिलक को राजनीतिक कार्य बन्द करने का आदेश दिया। भारत सचिव की इस घोषणा से कि भारतीयों को उत्तरदायी शासन धीरे-धीरे सौंप दिया जाएगा, होमरूल लीग आन्दोलन ढीला पड़ने लगा। फिर, उदारवादियों ने भी अपना समर्थन वापस ले लिया था लीग से। 1918 में लीग-आन्दोलन ठंढा पड़ गया। होमरूल लीग-आन्दोलन के प्रमुख नेता बाल गंगाधर तिलक 1918 के अंत में इण्डियन अनरेस्ट के लेखक चिराल के विरुद्ध मानहानि का मुकद्दमा दायर कर इंग्लैण्ड चले गए। उनके इंग्लैण्ड प्रवास के दौरान लीग नेतृत्वविहीन हो गया, जबकि वह समय लीग-आन्दोलन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था। फिर, जुलाई, 1918 में सुधार-योजना का प्रकाशन हुआ और राष्ट्रवादी दो गुटों में विभाजित हो गए—पहला गुट इन प्रस्तावों का विरोधी था, जबकि दूसरा गुट सुधार-प्रस्तावों को लागू करवाना चाहता था। लीग-आन्दोलन के दो गुटों के नेताओं में एनीबेसेण्ट इन सुधार प्रस्तावों के विरोध या समर्थन में कुछ कहने की स्थिति में नहीं थीं और तिलक ने इसके विरोध का स्तर प्रखर किया था, पर बाद में वे लन्दन चले गए। तिलक के विदेश प्रवास और एनीबेसेण्ट की ढुलमुल नीतियों ने लीग-आन्दोलन के पतन में अहम भूमिका निभाई।

कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन (या लखनऊ समझौता)—1916

अतिवादियों का कांग्रेस में पुनः प्रवेश: 1916 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में आयोजित किया गया, जिसकी अध्यक्षता उदारवादी नेता अंबिका चरण मजुमदार ने की। इस अधिवेशन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि थी गरमदल (अतिवादियों) का कांग्रेस में पुनः

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

[illegible]

4. दो प्रमुख उत्तरदायी शासन के कांग्रेस के दोनों दलों ने एकता का मार्ग प्रशस्त महात्मा की मृत्यु हो जाने से कांग्रेस के दोनों दलों ने एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ क्योंकि ये दोनों ही भला उग्रवादियों को नहीं चाहते थे। भी हालत में उग्रवादियों से एकता नहीं चाहते थे। तथा किसी

कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग का लखनऊ समझौता: कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन की एक अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि थी--कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग एक-दूसरे के काफी करीब आ गये तथा दोनों ने सरकार के समक्ष अपनी समान मांगें प्रस्तुत की। कांग्रेस एवं लीग के मध्य यह समझौता और भी महत्वपूर्ण था क्योंकि इस समय युवा क्रांतिकारी आतंकवादियों में मुस्लिम लीग की अच्छी पकड़ थी। फलतः लीग के कांग्रेस के समीप आने से कांग्रेस के साम्राज्यवाद विरोधी अभियान को और गति मिल गयी। मुस्लिम लीग के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के समीप आने के कई कारण थे--

1. 1912-13 के बाल्कान युद्ध में ब्रिटेन ने तुर्की की सहायता से इंकार कर दिया। इस युद्ध के कारण यूरोप में तुर्की की शक्ति क्षीण हो गयी तथा उसका सीमा क्षेत्र संकुचित हो गया। उस समय तुर्की के शासक का दावा था कि वह सभी मुसलमानों का 'खलीफा' या 'प्रधान' है। भारतीय मुसलमानों की सहानुभूति तुर्की के साथ थी। ब्रिटेन द्वारा युद्ध में तुर्की को सहयोग न दिये जाने से भारतीय मुसलमान रुष्ट हो गये। फलतः मुस्लिम लीग ने कांग्रेस से सहयोग करने का निश्चय किया, जो ब्रिटेन के विरुद्ध स्वतंत्रता आंदोलन चला रही थी।

2. बंगाल विभाजन को रद्द किये जाने के सरकारी निर्णय से उन मुसलमानों को घोर निराशा हुयी जिन्होंने 1905 में इस विभाजन का जोरदार समर्थन किया था।

3. ब्रिटिश सरकार द्वारा अलीगढ़ में विश्वविद्यालय की स्थापना एवं उसे सरकारी सहायता दिये जाने से इन्कार करने पर शिक्षित मुसलमान रुष्ट हो गये।

4. मुस्लिम लीग के तरुण समर्थक धीरे-धीरे सशक्त राष्ट्रवादी राजनीति की ओर उन्मुख हो रहे थे तथा उन्होंने अलीगढ़ स्कूल के सिद्धांतों को उभारने का प्रयत्न किया। 1912 में लीग का अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। इस अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने निश्चय किया कि वह भारत के अनुकूल 'स्वशासन' की स्थापना में किसी अन्य ग्रुप या दल को सहयोग कर सकता है बशर्ते यह भारतीय मुसलमान के हितों पर कुठाराघात न करे तथा उनके हित सुरक्षित बने रह सकें। इस प्रकार कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग दोनों की 'स्वशासन की अवधारणा' समान हो गयी तथा इससे उन्हें पास आने में सहायता मिली।

5. प्रथम विरुद्ध युद्ध के दौरान सरकार की दमनकारी नीतियों से युवा मुसलमानों में भय का वातावरण व्याप्त हो गया था। मौलाना अब्दुल कलाम आजाद के पत्र अल हिलाल तथा मोहम्मद अली के पत्र कामरेड को सरकारी दमन का निशाना बनना पड़ा, वहीं दूसरी ओर अली बंधुओं, मौलाना आजाद तथा हसरत मोहानी को नजरबंद कर दिया गया। सरकार की इन नीतियों ने युवा मुसलमानों विशेषकर लीग के युवा सदस्यों में साम्राज्यवाद विरोधी भावनायें जागृत हो गयीं तथा वे उपनिवेशी शासन को समूल नष्ट करने

हेतु अवसर की तलाश करने लगे।

उपरोक्त कारकों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के एकीकरण को सम्भव बना दिया। कांग्रेस एवं लीग में इस समझौते के लखनऊ समझौते के नाम से जाना जाता है। इस समझौते के मुख्य निम्नानुसार थे--

1. कांग्रेस द्वारा उत्तरदायी शासन की मांग को लीग ने स्वीकार कर लिया।

2. कांग्रेस ने मुस्लिम लीग की मुसलमानों के लिये पृथक निर्वाचन की मांग को स्वीकार कर लिया।

3. प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं में निर्वाचित भारतीय सदस्यों की संख्या का एक निश्चित भाग मुसलमानों के लिये आरक्षित कर दिया गया। बम्बई सहित सिंध में 33.3 प्रतिशत, बंगाल में 40 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 15 प्रतिशत, पंजाब में 50 प्रतिशत, बिहार में 25 प्रतिशत, यू.पी. में 30 प्रतिशत सीटें मुस्लिम लीग को दी गयी। मद्रास में भी 15 प्रतिशत सीटें मुस्लिम लीग को दी गयी। केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा में कुल निर्वाचित भारतीय सदस्यों का 1/9 भाग मुसलमानों के लिये आरक्षित किया गया तथा इनके निर्वाचन हेतु साम्प्रदायिक चुनाव व्यवस्था स्वीकार की गयी।

5. यह निश्चित किया गया कि यदि किसी सभा में कोई प्रस्ताव सम्प्रदाय के हितों के विरुद्ध हो तथा 3/4 सदस्य उस आधार पर उसका विरोध करें तो उसे पास नहीं किया जायेगा।

एकीकरण के फलस्वरूप जहां एक ओर मुस्लिम लीग, कांग्रेस के साथ सरकार को संयुक्त संवैधानिक मागों का प्रस्ताव पेश करने पर सहमत हो गयी वहीं दूसरी ओर कांग्रेस ने मुस्लिम लीग की पृथक निर्वाचन व्यवस्था की मांग को स्वीकार कर लिया। समझौते के पश्चात् कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग दोनों ने सरकार के समक्ष अपनी संयुक्त मांगे पेश कीं, जो इस प्रकार थीं--

1. सरकार, भारत को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन देने की शीघ्र घोषणा करे।

2. प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं में निर्वाचित भारतीयों की संख्या बढ़ाई जाये तथा उन्हें और अधिक अधिकार प्रदान किये जायें।

3. वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में आधे से ज्यादा सदस्य भारतीय हों।

साम्प्रदायिकता का उदय एवं विकास

मौलिक रूप में साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है। भारत में इसके साम्प्रदायिक विचारधारा के मुख्य तीन चरण हैं—

(i) **साम्प्रदायिक राष्ट्रवादः** इस विचारधारा में एक ही समूह या किसी विशेष धार्मिक समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले सभी लोगों के हित समान होते हैं। उदारहणार्थ—यदि उनके हितों का धर्म से कोई लेना देना न हो तब भी वे सभी को समान रूप से प्रभावित करते हैं।

(ii) **उदारवादी साम्प्रदायिकताः** इस विचारधारा के अनुसार, बहुधार्मिक समाज में एक धर्म के अनुयायियों के सांसारिक हित अन्य किसी भी धर्म के अनुयायियों के सांसारिक हितों से भिन्न हैं।

(iii) **चरम या उग्रवादी साम्प्रदायिकताः** इस विचारधारा के अनुसार, विभिन्न धर्मों के अनुयायियों या सामुदायों के हित एक दूसरे के विरोधी होते हैं। इस तरह की व्यवस्था में दो विभिन्न धर्म समुदाय एक साथ असि में नहीं रह सकते क्योंकि एक समुदाय के हित दूसरे समुदाय के हि टकराते हैं।

भारत में साम्प्रदायिकता का विकास भी इसी प्रकार का है। ऐ है कि साम्प्रदायिकता का विकास सिर्फ भारत में ही हुआ है। यह परिस्थितियों का प्रतिफल था, जिन्होंने दूसरे समाजों में साम्प्रदायि घटनाओं और विचारधाराओं को जन्म दिया था। जैसे नस्लवाद,

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...वाद उत्तरी आयरलैंड में कैथोलिक-प्रोटेस्टेंट संघर्ष या लेबनान ...लिम संघर्ष।

...साम्प्रदायिकता को उभारने वाले तत्वों ने आर्थिक हितों को दरकिनार ...साम्प्रदायिकता को महत्वपूर्ण बताया तथा जनमानस में इसके लिये एक व्यापक ...तैयार किया।

...साम्प्रदायिकता एक आधुनिक विचारधारा और राजनीतिक प्रवृत्ति है, ...साम्प्रदायिक जड़ों तथा इसके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ...सामाजिक इतिहास के आधुनिक काल में खोजा जा सकता है। यह ...भारतीय समूहों, वर्गों और ताकतों की सामाजिक आकांक्षाओं ...सामाजिक समूहों, वर्गों और उनकी राजनीतिक जरूरतों की पूर्ति करती थी। ...करती थी और उनकी राजनीतिक ढांचे ने न केवल इसे उत्पन्न किया अपितु उसके कारण ...आर्थिक ढांचे ने न केवल इसे उत्पन्न किया अपितु उसके कारण ...फूली भी।

...साम्प्रदायिकता का सामाजिक आधार उस उभरते हुये मध्य वर्ग पर ...था, जो तत्कालीन परिस्थितियों के वातावरण में अपने धार्मिक हितों ...अपने आर्थिक हितों को भी ढूंढ रहा था। यह उस काल में बुर्जुआ ...का प्रश्न था।

...भारत में साम्प्रदायिक चेतना का जन्म उपनिवेशवादी नीतियों तथा ...विरुद्ध संघर्ष करने की आवश्यकता से उत्पन्न परिवर्तनों के कारण ...विभिन्न क्षेत्रों तथा देश के सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक ...भारत को एक आधुनिक राष्ट्र बनाने की प्रक्रिया, आधुनिक ...वर्गों एवं उपवर्गों का निर्माण तथा भारतीयों के बढ़ते हुये अंतर्विरोध ...कारणों से लोगों में अपने साझा हितों को देखने के लिये नये तरीकों ...हुयी। संपर्कों और वफादारियों के विस्तृत आयामों का विकास ...पहचानों का निर्माण आवश्यक हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी के ...नयी पहचानों की जिस नयी अवधारणा का जन्म हुआ उससे भी ...में राजनीति की विचारधारा को बल मिला।

...साम्प्रदायिकता की विचारधारा को ग्रहण करने, नई पहचानों तथा विचारधाराओं का ...नये विचारों को ग्रहण करने, नई पहचानों तथा विचारधाराओं का ...संघर्ष के दायरे को व्यापक बनाने के लिये लोगों ने पुरातन ...करने तथा संघर्ष के प्रति आसक्ति प्रकट की उसने भी ...पूर्व-आधुनिक तरीकों के प्रति आसक्ति प्रकट की उसने भी ...साम्प्रदायिकता की विचारधारा को सशक्त बनाने में मदद की। संकीर्ण ...प्रतिक्रियावादी तत्वों ने साम्प्रदायिकता को पूर्ण समर्थन दिया। ...यद्यपि धार्मिकता, साम्प्रदायिकता को बहुत ज्यादा प्रोत्साहित करने ...का मूल कारण नहीं था किंतु भारत जैसे देश में जहां शिक्षा का अभाव था ...लोगों में बाह्य जगत संबंधी चेतना ना के बराबर थी, धार्मिकता ने ...साम्प्रदायिकता के लिये उत्प्रेरक की भूमिका निभायी तथा तथाकथित तत्वों ...इसे साम्प्रदायिकता के वाहन के रूप में प्रयुक्त किया।

विकास के कारण

साम्प्रदायिकता से तात्पर्य उस संकीर्ण मनोवृत्ति से है, जो धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर पूरे समाज तथा राष्ट्र के व्यापक हितों के विरुद्ध व्यक्ति को केवल अपने व्यक्तिगत धर्म के हितों को प्रोत्साहित करने तथा उन्हें संरक्षण देने की भावना को महत्व देती है। यह व्यक्ति में अंतरराष्ट्रीय एवं सर्वमान्य सत्य की भावना के विरुद्ध व्यक्तिगत धर्म और सम्प्रदाय के आधार पर परस्पर घृणा, द्वंद, ईर्ष्या तथा द्वेष को जन्म देती है। यह भावना अपने धर्म के प्रति अंध भक्ति तथा परधर्म तथा उसके अनुयायियों के प्रति विद्वेष की भावना उत्पन्न करती है। भारत में साम्प्रदायिकता के विकास में विभिन्न कारकों, परिस्थितियों एवं तत्वों ने सम्मिलित भूमिका निभायी, जो इस प्रकार है:

सामाजिक एवं आर्थिक कारण: कालांतर में भारत में बुर्जआ वर्ग तथा मध्य वर्ग का उदय हुआ। उदय की यह प्रक्रिया हिन्दू तथा मुसलमान सम्प्रदायों में समान थी। सरकारी सेवाओं, व्यवसाय एवं उद्योगों में इन दोनों के मध्य प्रतिद्वंदिता अवश्यंभावी थी और धीरे-धीरे यह बढ़ती

गयी। मुस्लिम बुर्जुआ वर्ग ने अपने पक्षपोषण हेतु हिन्दू बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध, निम्न मध्यवर्गीय मुसलमानों को प्रोत्साहित किया।

भारत के आर्थिक पिछड़ेपन तथा भयावह बेरोजगारी जैसी समस्याओं ने अंग्रेजों को साम्प्रदायिकता को उभारने तथा अलगाववादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने का भरपूर अवसर प्रदान किया। अंग्रेजों ने इस हेतु व्यक्तिगत गुणों, पक्षपात तथा आरक्षण को विस्तृत आधार प्रदान कर प्रतिद्वंदिता को बढ़ाया तथा इनका उपयोग साम्प्रदायिकता के उत्थान में किया। इसके साथ ही मुसलमानों में आधुनिक राजनीतिक चेतना के विकास की प्रक्रिया अपेक्षाकृत धीमी थी तथा उन पर परम्परागत प्रतिक्रियावादी कारक ज्यादा हावी थे फलतः इस समुदाय में साम्प्रदायिक विचारधारा को अपनी जड़ें जमाने के लिये उचित अवसर मिला।

अंग्रेजों की फूट डालो और शासन करो की नीतिः प्रारंभ में ब्रिटिश सरकार ने मुसलमानों को शंकालु दृष्टि से देखा। 1857 के विद्रोह और बहावी आंदोलन के पश्चात तो सरकार की शंका उनके प्रति और बढ़ गयी। फलतः अंग्रेजों ने मुसलमानों के प्रति दमन तथा भेदभाव की नीति अपनायी। शिक्षा में अंग्रेजी भाषा के प्रसार से अरबी तथा फारसी भाषायें पिछड़ गयीं। मुस्लिम समाज में इसका प्रतिकूल प्रभाव यह हुआ कि उनमें आर्थिक पिछड़ापन बढ़ा तथा वे धीरे-धीरे सरकारी सेवाओं से वंचित होने लगे।

1870 के पश्चात भारतीय राष्ट्रवाद के उभरने तथा नवशिक्षित मध्य-वर्ग के राजनीतिक प्रक्रियाओं एवं सिद्धांतों से परिचित होने के कारण अंग्रेजों ने मुसलमानों के दमन की अपनी नीति त्याग दी तथा उनमें चेतना का प्रसार कर तथा उन्हें आरक्षण एवं समर्थन देकर उन्हें उभारने का प्रयत्न किया, जिससे मुसलमानों को राष्ट्रवादी ताकतों के विरुद्ध प्रयुक्त किया जा सके। अंग्रेजों ने सर सैय्यद अहमद खां जैसे मुस्लिम नेताओं को कांग्रेस के विरुद्ध उकसाया। यद्यपि प्रारंभ में सैय्यद अहमद खां का दृष्टिकोण बुद्धिमत्तापूर्ण, दूरदर्शी एवं सुधारवादी था किंतु बाद में उन्होंने उपनिवेशी शासन का समर्थन करना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने मुसलमानों को कांग्रेस का विरोध करने तथा राजनीतिक गतिविधियों से तटस्थ रहने की सलाह दी। उन्होंने हिन्दू एवं मुसलमानों के पृथक अस्तित्व एवं पृथक हितों की बात भी कही। कालांतर में उन्होंने यह भी प्रचार करना शुरू कर दिया कि चूंकि हिन्दू भारतीय संख्या में बहुमत में है इसलिये ब्रिटिश शासन के निर्बल होने या समाप्त हो जाने की स्थिति में हिन्दुओं का मुसलमानों पर दबदबा कायम हो जायेगा।

भारतीय इतिहास लेखन द्वारा साम्प्रदायिकता को बढ़ावाः अने अंग्रेजी इतिहासकारों ने हिन्दू-मुस्लिम फूट को बढ़ावा देने तथा ब्रिटि साम्राज्यवाद की जड़ें सुदृढ़ करने के उद्देश्य से भारतीय इतिहास की व्या इस तरह की जिससे साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिल सके। बाद में वि भारतीय इतिहासकारों ने उनका अनुसरण करते हुये प्राचीन भारत को काल तथा मध्यकालीन भारत को मुस्लिम काल की संज्ञा दी। मध्यव भारत में शासकों के आपसी संघर्ष को इन इतिहासकारों ने हिन्दू संघर्ष के रूप में उद्धृत किया।

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों का पार्श्व प्रभावः 19वीं में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों समुदायों में अनेक सामाजिक तथ सुधार आंदोलन हुये। इन सभी सुधार आंदोलनों ने स्वयं को समुदाय के लोगों तक ही सीमित रखा। सुधार आंदोलनों की से देश विभिन्न समुदायों में विभक्त हो गया। मुस्लिम सुधार अ 'बहावी आंदोलन' तथा हिन्दू सुधार आंदोलन जैसे 'शुद्धि व्यक्तिगत धार्मिक स्वरूप के कारण धर्म का उग्रवादी चरित्र तथा इससे साम्प्रदायिकता को बल मिला। इन सुधार आंदोलन विरासत के धार्मिक तथा दार्शनिक पहलुओं पर एकांकी इन विभिन्न सुधार-आंदोलनों के समानांतर प्रवाह को एक धर्म का अपमान करना समझा गया।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

पुनरीक्षण अभ्यास

प्रश्न	उत्तर
1. 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना का श्रेय किसको दिया जाता है?	1. ए.ओ. ह्यूम
2. वर्ष 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम सम्मेलन में अध्यक्ष किसे बनाया गया था?	2. डब्ल्यू.सी. बनर्जी
3. 'पावर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया' किसके द्वारा लिखी गई थी?	3. दादाभाई नौरोजी
4. 'भारतीय असंतोष का जनक' किसे कहा गया है?	4. बालगंगाधर तिलक
5. कांग्रेस की स्थापना के समय भारत का वॉयसराय कौन था?	5. डफरिन
6. बंगाल का विभाजन किस वायसराय के समय में हुआ था?	6. लार्ड कर्जन
7. 'गणपति महोत्सव' कब प्रारंभ किया गया?	7. 1893
8. 'अभिनव भारत' संगठन से कौन संबंधित था?	8. वी.डी. सावरकर
9. बालगंगाधर तिलक को पहली बार किस जेल में रखा गया था?	9. मंडलया
10. महाराष्ट्र में शिवाजी समारोह किसने प्रारंभ किया था?	10. बालगंगाधर तिलक
11. बंगाल विभाजन किसके काल में रद्द किया गया था?	11. लार्ड हार्डिंग
12. 'वंदेमातरम्' नामक दैनिक का प्रकाशन किसने किया था?	12. विपिन चन्द्रपाल
13. 'सोशल सर्विस लीग' की स्थापना किसने की थी?	13. नारायण मल्हार जोशी
14. 'मराठा' समाचार पत्र का प्रकाशन किस भाषा में किया जाता था?	14. अंग्रेजी
15. महाराष्ट्र के अंग्रेज अधिकारी रैंड की हत्या का जिम्मेदार कौन था?	15. चोपकर बंधु
16. भारत की राजधानी को कलकत्ता से दिल्ली कब लाया गया?	16. 1912 में
17. गदर पार्टी का गठन कहां हुआ था?	17. सानफ्रांसिस्को
18. स्वदेशी आंदोलन का उदय कब हुआ था?	18. बंगाल विभाजन
9. 'मुस्लिम लीग' की स्थापना कब की गई?	19. 1906
'सूरत-विभाजन' कब हुआ था?	20. 1907
'पूना होमरूल लीग' की स्थापना किसके नेतृत्व में की गई थी?	21. बालगंगाधर तिलक
916 में मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच समझौता कहां हुआ था?	22. लखनऊ
ल सेवा मंडल' की स्थापना किसने की थी?	23. अमृतलाल विट्ठलदास
रमती आश्रम' की स्थापना गांधीजी ने कहां पर की थी?	24. अहमदाबाद
मला' का गठन किसने किया था?	25. गणेश दामोदर सावरकर
' सोसाइटी की स्थापना किसके द्वारा हुई?	26. भुपेन्द्रनाथ दत्ता
मुदायिक प्रतिनिधित्व प्रणाली की व्यवस्था किस अधिनियम के द्वारा की गई?	27. भारतीय परिषद अधिनियम, 1909
' का विलय 'अभिनव भारत' में कब किया गया?	28. 1904
उस' की स्थापना किसने की थी?	29. श्यामजी कृष्ण वर्मा
तीय विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या किस अधिनियम के द्वारा	30. भारतीय परिषद अधिनियम, 190
वाइली' की हत्या किसने की थी?	31. मदनलाल धींगरा

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

5. गांधी युग 1919-1945

...वाद के पुनः जीवंत होने के कारण

...युद्ध की समाप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय ...शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। युद्धोपरांत, भारत में ...शक्तियां पुनः प्रारंभ हो गयीं लेकिन एशिया एवं अफ्रीका के ...युद्ध के प्रभाव से अछूते नहीं रहे और इन उपनिवेशों ...भी विरोधी शक्तियां सिर उठाने लगीं। ब्रिटिश शासन के ...भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने इस समय एक निर्णायक ...से सबसे प्रमुख कारण था—भारतीय राजनीतिक परिदृश्य ...का अभ्युदय। राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गांधी के प्रवेश ...से आंदोलन एवं लोकप्रियता में अपार वृद्धि हुई तथा यह सम्पूर्ण ...समाज का आंदोलन बन गया।

...उत्पन्न हुई आर्थिक कठिनाइयां

...युद्ध समाप्त होने के पश्चात् भारतीयों को अनेक क्षेत्रों ...का सामना करना पड़ा।

...में अत्यधिक वृद्धि, इसके पश्चात् भारतीय उद्योगों में ...को प्रोत्साहन देने के कारण भारतीयों के स्वामित्व वाले ...पर बुरा प्रभाव पड़ा। इसके फलस्वरूप कई उद्योग न ...के शिकार हो गये बल्कि बंद भी हो गये। फलतः भारतीय ...से सहायता तथा उनके उत्पादों के विरुद्ध आयात को ...की मांग करने लगे।

...और शिल्पकारः अंग्रेजी शासन के कारण बर्बाद हो गये। ...ओर भारी संख्या में बेरोजगार हो गये, वहीं दूसरी ओर ...पर दोहरी मार पड़ी।

...भारी करापोषण तथा निर्धनता से त्रस्त थे। ये किसी ऐसे ...में हो, जिसमें वे अपने विरोध स्वर को मुखरित कर सकें। ...में नियुक्त भारतीय सैनिक युद्ध के पश्चात् जब वापस ...के अनुभवों को भारतीय लोगों को सुनाये तथा ...युद्ध का विरोध करने हेतु प्रोत्साहित किया।

...बेरोजगारी की समस्या से बुरी तरह पीड़ित ...वर्ग, यह वर्ग बेरोजगारी की समस्या से बुरी तरह पीड़ित ...भारतीयों का लगभग हर वर्ग त्रस्त था तथा ब्रिटिश ...ने इसे और बदतर बना दिया। फलतः समाज का ...भागीदारी हेतु उद्वेलित हो उठा।

...साम्राज्यवाद से राष्ट्रवादियों का मोहभंग

...सभी साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने अपने उपनिवेशों को ...विश्वास दिलाया कि युद्धोपरांत सभी ...एवं आत्म-निर्णय का नया युग प्रारम्भ किया जायेगा। ...ने एक-दूसरे को कलंकित करने का भरपूर ...के अत्याचारी-अमानवीय कार्यों तथा ...ब्यौरों को सार्वजनिक किया। किन्तु शीघ्र ...कुछ अन्य तात्कालिक शांति सम्मेलनों से ...स्पष्ट हो गयी कि वे अपने उपनिवेशों में अपनी ...इन सम्मेलनों में वे विजित उपनिवेशों को ...की सांस्कृतिक तथा सैन्य श्रेष्ठता का ...परिणामस्वरूप, युद्धोपरांत एशिया तथा ...तुर्की, मिस्र, इरान, अफगानिस्तान, बर्मा, ...हिन्द-चीन, चीन तथा कोरिया इत्यादि में ...गयीं।

रूसी क्रांति का प्रभाव

7 नवंबर 1917 को सम्पन्न हुई रूस की क्रांति में बोल्शेविक दल के समर्थकों ने रूस के निरंकुश, स्वेच्छाचारी व अत्याचारी जारशाही का शासन समाप्त कर दिया तथा वी.आई. लेनिन के नेतृत्व में प्रथम समाजवादी राज्य 'सोवियत संघ' की स्थापना की। सोवियत संघ ने शीघ्र ही चीन तथा एशिया के अन्य भागों से जारशाही के साम्राज्यवादी अधिकारों को समाप्त करने की घोषणा की तथा जारशाही के अधीन सभी एशियाई उपनिवेशों को आत्मनिर्णय के अधिकार दिये तथा उनकी सीमाओं के साथ उन्हें समान दर्जा प्रदान किया।

इस क्रांति से यह बात सिद्ध हो गयी कि जनसमूह की एकता में अपार शक्ति है तथा वह जार जैसी निष्ठुर महाशक्ति को भी समूल नष्ट कर सकती है। इस क्रांति से यह संदेश भी मिला कि संगठित, संयुक्त एवं दृढ़निश्चयी जनसमूह किसी भी साम्राज्यवादी शासन को समाप्त कर सकता है।

भारत में अंग्रेज किसी प्रकार से शक्ति का बंटवारा नहीं चाहते थे तथा वे भारतीयों को प्रशासन में भागीदार बनाये जाने के किसी भी प्रयास के विरुद्ध थे। उनकी नीति, भारतीयों को लालच या भ्रम में रखकर उन पर शासन करते रहने की थी। ब्रिटेन, महायुद्ध के समय की राष्ट्रवादी क्रांतिकारी गतिविधियों से अत्यन्त रूष्ट था तथा वह किसी भी प्रकार उनको भुलाने के लिये तैयार न था। फलतः कांग्रेस के उदारवादियों को संतुष्ट करने के लिये उसने एक ओर 1919 में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार प्रस्तुत किये, वहीं दूसरी ओर क्रांतिकारियों का दमन करने के लिये रोलेट एक्ट बनाया।

गांधीजी का अभ्युदय

प्रारंभिक जीवन तथा दक्षिण अफ्रीका में सत्य का प्रयोग

मोहनदास करमचन्द गांधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 को गुजरात के काठियावाड़ में पोरबंदर नामक स्थान में हुआ था। उनके पिता काठियावाड़ के दीवान थे। इंग्लैंड से बैरिस्टरी पास करने के उपरांत वे गुजरात के एक व्यापारी दादा अब्दुल्ला का मुकदमा लड़ने दक्षिण अफ्रीका गये। वहां उन्होंने देखा कि जो एशियाई मजदूरी करने दक्षिण अफ्रीका गये थे वे किस प्रकार प्रजातीय उत्पीड़न तथा भेदभाव के शिकार थे। वहां उन्होंने गोरो द्वारा काले लोगों से रंगभेद की नीति के विरुद्ध विरोध प्रकट किया। इसके पश्चात् गांधीजी ने निश्चय किया कि वे वहां रूककर भारतीय मजदूरों को उनके अधिकारों के लिये संघर्ष करने की प्रेरणा देंगे तथा उन्हें संगठित करेंगे। गांधीजी 1914 तक दक्षिण अफ्रीका में रुके, तत्पश्चात् वे भारत वापस आये।

दक्षिण अफ्रीका में कार्यरत भारतीय तीन वर्गों में संगठित थे। प्रथम-वर्ग में मुख्यतया दक्षिण भारत से आये हुए मजदूर थे, जो 1890 के पश्चात् गन्ने के खेतों में काम करने दक्षिण अफ्रीका आये थे। दूसरे-वर्ग में भारत से आये मैमन मुसलमान थे, जो मजदूरों के साथ दक्षिण अफ्रीका आये थे तथा तीसरे-वर्ग में भारत से आये वे मजदूर थे, जो कार्य का अनुबंध समाप्त होने के पश्चात् अपने परिवार के साथ वहीं रहने लगे थे। ये भारतीय मुख्यतः अशिक्षित थे तथा उन्हें अंग्रेजी का अत्यल्प या बिलकुल ज्ञान नहीं था। ये सभी दक्षिण अफ्रीका में प्रजातीय भेदभाव के शिकार थे। दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार इन भारतीयों पर अनेक जुल्म ढाती थी। इन्हें मत देने का अधिकार से वंचित रखा गया था। इन्हें कुछ विशेष स्थानों में ही रहने की अनुमति थी, जो अत्यन्त संकीर्ण तथा गंदे थे एवं यहां की मानवीय दशा अत्यन्त निम्न थीं। गोरी सरकार ने 9 बजे रात्रि के पश्चात् भारतीय काले अफ्रीकियों के घर से बाहर निकलने पर प्रतिबंध लगा दिया था उन्हें सार्वजनिक फुटपाथों के प्रयोग की अनुमति नहीं थी।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

संघर्ष का उदारवादी चरण (1894-1906)

इस चरण में गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीकी सरकार को याचिकायें एवं प्रार्थना-पत्र भेजे। उन्होंने ब्रिटेन से मांग की कि वह इस विषय पर अनेक प्रार्थना पत्र भेजे। उन्होंने ब्रिटेन से मांग की कि वह इस विषय पर हस्तक्षेप कर भारतीयों की दशा सुधारने का प्रयास करे क्योंकि भारत ब्रिटेन का उपनिवेश है। अतः ब्रिटेन का उत्तरदायित्व है कि वह भारतीयों पर हो रहे प्रजातीय भेदभाव एवं उत्पीड़न को रोकने का प्रयास करे। गांधीजी ने सभी भारतीयों को सम्मिलित कर नटाल भारतीय कांग्रेस की स्थापना की तथा इंडियन ओपिनियन नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

अहिंसात्मक प्रतिरोध या सत्याग्रह का काल (1906-1914)

दक्षिण अफ्रीका में गोरी सरकार के विरुद्ध गांधीजी के संघर्ष का दूसरा चरण 1906 में प्रारम्भ हुआ। इस चरण में गांधीजी ने अहिंसात्मक प्रतिरोध या सविनय अवज्ञा की नीति अपनायी, जिसे उन्होंने सत्याग्रह का नाम दिया।

पंजीकरण प्रमाणपत्र के विरुद्ध सत्याग्रह (1906)

दक्षिण अफ्रीकी सरकार ने एक विधान बनाकर प्रत्येक भारतीय के लिये यह अनिवार्य कर दिया कि वे अपने अंगूठे के निशान वाले पंजीकरण प्रमाणपत्र को हर समय अपने पास रखें। तदुपरांत गांधीजी के नेतृत्व में सभी भारतीयों ने इस भेदभावमूलक कानून का विरोध करने का निर्णय लिया। गांधीजी ने इस हेतु 'अहिंसात्मक प्रतिरोध सभा' का गठन किया। गांधीजी सहित कई भारतीयों को पंजीकरण कानून का विरोध करने के कारण जेल में डाल दिया गया। बाद में सरकारी सरकारी अधिकारियों ने स्वयं इन सभी निडर भारतीयों का छलपूर्वक रजिस्ट्रेशन कर दिया। लेकिन भारतीयों ने अपना विरोध अभियान जारी रखा तथा गांधीजी की अगुवायी में अपने रजिस्ट्रेशन के कागजातों को सामूहिक रूप से जला दिया।

प्रवासी भारतीयों के प्रवेश पर रोक का विरोध

इस बीच सरकार ने एक और कानून बनाया, जिसका उद्देश्य प्रवासी भारतीयों के प्रवेश को रोकना था। इस कानून का विरोध करने हेतु अनेक वरिष्ठ भारतीय नटाल से ट्रांसवाल आये। ट्रांसवाल के तमाम भारतीयों ने भी आंदोलनकारियों का साथ दिया। लोगों ने कई स्थानों पर लाइसेंस का उल्लंघन किया। कानून का विरोध करने के लिये भारतीयों ने एक प्रांत से दूसरे प्रांत की यात्रा की। सरकार ने विरोधियों के प्रति दमन का मार्ग अपनाया। 1908 में गांधीजी को कारागार भेज दिया गया। कई अन्य भारतीयों को भी जेल में डाल दिया गया तथा उन्हें तरह-तरह की यातनायें दी गयीं। इसके शिकार ज्यादातर गरीब हुये। व्यापारियों को आर्थिक हानि पहुंचाने की भी सरकार ने धमकी दी।

ल्सटाय फार्म की स्थापना

गांधीजी के नेतृत्व में चल रहा आंदोलन धीरे-धीरे संकटग्रस्त होने । आंदोलनकारियों की सक्रियता धीरे-धीरे कम होने लगी तथा सरकार ड़ियल रूख बरकरार रहा। 1909 में गांधीजी तथा अंग्रेज अधिकारियों वार्ता का कोई खास परिणाम नहीं निकला। यद्यपि अभी भी आंदोलन रखना आवश्यक था लेकिन आंदोलन से सम्बद्ध भारतीयों के मध समस्या खड़ी हो गयी। इन्हीं सब परिस्थितियों के कारण गांधीजी ा फार्म' की स्थापना की। इस फार्म में गांधीजी ने अपने एक ार मित्र कालेनबाख की मदद से सत्याग्रहियों के परिवार की को हल किया तथा उनके भरण-पोषण की व्यवस्था की। काफी पैसा भेजा गया।

ा भारतीय विवाहों को अप्रामाणित करने के

ह का स्वरूप बड़ा था। इकरारनामे की अवधि समाप्त में उसे भारतीयों पर सरकार ने तीन पौंड का कर लगा दिया। इसके खिलाफ तीव्र सत्याग्रह छिड़ गया। भारतीय गरीब मजदूर थे, जिनकी मासिक आमदनी 10 शिलिंग थी। उनके में तीन पौंड का कर उनके लिये बहुत ज्यादा था। जब इस विषय सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ तो इसमें लगभग सभी भारतीयों ने भाग इसे व्यापक जन आंदोलन का रूप दे दिया। इसी बीच सुप्रीम निर्णय ने आंदोलन को और भड़का दिया। कोर्ट ने उन सभी जो ईसाई पद्धति से नहीं सम्पन्न हुये थे तथा जिनका पंजीकरण था, अवैध घोषित कर दिया। इस कानून के अनुसार, हिन्दू, पारसी रीति-रिवाजों से सम्पन्न सभी शादियां अवैध थीं तथा से उत्पन्न सभी संतानें भी अवैध। भारतीयों ने इस फैसले को का अपमान समझा। गांधीजी सहित अनेक सत्याग्रही कानून कर नटाल से ट्रांसवाल पहुंच गये। सरकार ने इन लोगों को कारावास में डाल दिया। शीघ्र ही खदान मजदूर तथा बागान सक्रिय रूप से आंदोलन में सम्मिलित हो गये। इन मजदूरों ने के विरोध में हड़ताल कर दी। सरकार की कठोर दमनकारी नीतियों भारतीय समुदाय तिलमिला उठा। गोपाल कृष्ण गोखले ने पूरे कर इस अत्याचार के खिलाफ जनमत तैयार किया। लार्ड हार्डिंग इसकी निंदा की तथा अत्याचारों के आरोप की निष्पक्ष जांच कराने की।

गांधीजी, लार्ड हार्डिंग तथा गोखले तथा सी.एफ.एन्ड्रयूज से की लंबी बातचीत के पश्चात् दक्षिण अफ्रीकी सरकार ने भारतीयों की मांगें मान ली। तीन पौंड का कर तथा पंजीकरण प्रमाणपत्र से समाप्त कर दिये गये। भारतीयों को उनके रीति-रिवाजों से विवाह की छूट प्रदान की गयी तथा भारतीय अप्रवासियों की अन्य कठिनाइयों दक्षिणी अफ्रीकी सरकार ने सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का आश्वासन दिया।

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के अनुभव

(i) दक्षिण अफ्रीका में गरीब भारतीयों के जुझारूपन को देखकर गांधीजी को विश्वास हो गया कि भारतीय जनता आवश्यकता पड़ने पर उदात्त उद्देश्य के लिये जुझारू संघर्ष और बलिदान को तैयार हो जाती है।

(ii) यहां गांधीजी विभिन्न सम्प्रदाय एवं समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य एकता स्थापित करने में सफल हुये। उनके नेतृत्व में हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, अमीर, गरीब, पुरुष, महिला सभी ने कंधे से कंधा मिलाकर आंदोलन में भाग लिया।

(iii) गांधीजी ने यह सबक सीखा कि कई बार नेताओं को ऐसे कठोर निर्णय भी करने पड़ सकते हैं, जो उनके समर्थकों को भी पसंद न आयें।

(iv) दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी को विरोधी राजनीतिक धाराओं से उन्मुक्त वातावरण में एक विशिष्ट राजनीतिक शैली, नेतृत्व के नये और संघर्ष के नये तरीकों को विकसित करने का अवसर मिला। फलस्वरूप वे गांधीवादी रणनीति व संघर्ष के तरीकों की विशेषताओं कमियों दोनों से भलीभांति परिचित हो गये तथा उन्हें विश्वास हो ये ही सबसे बेहतर हैं।

गांधीजी की सत्याग्रह की तकनीक

गांधीजी ने अपने दक्षिण अफ्रीका के प्रवास के दिनों में इ का प्रयोग किया। 1906 के पश्चात् गांधीजी ने यहां अवज्ञा आंदो किया, जिसे 'सत्याग्रह' का नाम दिया गया। सत्याग्रह, सत्य के सिद्धांतों पर आधारित था। इसकी मुख्य विशेषतायें इस

- सत्याग्रही यह कभी विचार नहीं करता कि गलत क्या सच्चा, अहिंसक एवं निडर रहता है।
- सत्याग्रही में बुराई के विरुद्ध संघर्ष करते समय

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...की शक्ति होनी चाहिये। ये यातनायें सत्य के लिये उसकी ...का एक हिस्सा हैं।

...के विरुद्ध संघर्ष की प्रक्रिया में एक सच्चा सत्याग्रही बुराई ...से अनुराग रखता है, घृणा या द्वेष नहीं।

...सच्चा सत्याग्रही बुराई के सामने कभी सिर नहीं झुकाता, उसका ...बहादुर एवं दृढ़ निश्चयी व्यक्ति ही सच्चा सत्याग्रही बन ...सत्याग्रह, कायर और दुर्बल लोगों के लिये नहीं है। कायर व्यक्ति ...दर्शाया जाता है, जिसका सत्याग्रह में कोई स्थान नहीं है।

गांधीजी की भारत वापसी

...गांधीजी, जनवरी 1915 में भारत लौटे। दक्षिण अफ्रीका में उनके संघर्ष ...की सफलताओं ने उन्हें भारत में अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया था। ...शिक्षित भारतीय अपितु जनसामान्य भी गांधीजी के बारे में भलीभांति ...परिचित हो चुका था। गांधीजी ने निर्णय किया कि वे अगले एक वर्ष तक ...देश का भ्रमण करेंगे तथा जनसामान्य की यथास्थिति का स्वयं ...अध्ययन करेंगे। उन्होंने यह भी निर्णय लिया कि फिलहाल वह किसी ...राजनीतिक मुद्दे पर कोई सार्वजनिक कदम नहीं उठायेंगे। भारत की ...राजनीतिक संस्थाओं की आस्था पहले ही खत्म हो चुकी थी तथा वे होमरूल ...लीग से उनकी राजनीति के भी खिलाफ थे कि अंग्रेजों पर कोई भी मुसीबत ...आने पर इस रणनीति से उनकी आस्था पहले ही खत्म हो चुकी थी तथा वे होमरूल ...लीग के लिये एक अवसर है। यद्यपि होमरूल आंदोलन इस समय काफी ...सक्रिय था किन्तु इसके सिद्धांत गांधीजी के विचारों से मेल नहीं खाते ...थे। उनका मानना था कि ऐसे समय में जबकि ब्रिटेन प्रथम विश्व युद्ध में ...फंसा हुआ है, होमरूल आंदोलन को जारी रखना अनुचित है। उन्होंने तर्क ...दिया कि इन परिस्थितियों में राष्ट्रवादी लक्ष्यों को प्राप्त करने का सर्वोत्तम ...मार्ग अहिंसक सत्याग्रह। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि जब ...तक राजनीतिक संगठन सत्याग्रह के मार्ग को नहीं अपनायेगा तब तक ...वे किसी भी संगठन से सम्बद्ध नहीं हो सकते।

...गांधीजी ने तीन संघर्षों—चम्पारण आंदोलन (बिहार) तथा अहमदाबाद और ...खेड़ा (जिलों गुजरात) सत्याग्रह में हिस्सा लिया। ये तीनों ही आंदोलन स्थानीय ...आर्थिक मांगों से सम्बद्ध थे। अहमदाबाद का आंदोलन, औद्योगिक मजदूरों ...का आंदोलन था तथा चम्पारण और खेड़ा किसान आंदोलन थे।

चम्पारण सत्याग्रह (1917)—प्रथम सविनय अवज्ञा

...चम्पारण का मामला काफी पुराना था। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ...चम्पारण के बागान मालिकों ने किसानों से एक अनुबंध करा लिया, जिसके अंतर्गत ...किसानों को अपनी भूमि के 3/20वें हिस्से में नील की खेती करना अनिवार्य ...था। यह व्यवस्था 'तिनकाठिया पद्धति' के नाम से जानी जाती थी। 19वीं ...सदी के अंत में जर्मनी में रासायनिक रंगों (डाई) का विकास हो गया, जिसने ...नील को बाजार से बाहर खदेड़ दिया। इसके कारण चम्पारण के बागान ...मालिक नील की खेती बंद करने को विवश हो गये। किसान भी मजबूरन ...नील की खेती से छुटकारा पाना चाहते थे। किन्तु परिस्थितियों को देखकर ...बागान मालिक किसानों की विवशता का फायदा उठाना चाहते थे। ...वे दूसरी फसलों की खेती करने के लिये किसानों को अनुबंध से मुक्त ...करने के एवज में लगान व अन्य करों की दरों में अत्याधिक वृद्धि कर दी। ...इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने द्वारा तय की गयी दरों पर किसानों को अपने ...खेत में नील की खेती करने के लिये बाध्य किया। चम्पारण से जुड़े एक प्रमुख आंदोलनकारी ...राजकुमार शुक्ल ने गांधीजी को चम्पारण बुलाने का फैसला किया। ...गांधीजी, राजेन्द्र प्रसाद, बृज किशोर, मजहर उल-हक, महादेव ...देसाई, नरहरि पारिख तथा जे.बी. कृपलानी के सहयोग से मामले की जांच ...प्रारम्भ की। पटना पहुंचे। गांधीजी के चम्पारण पहुंचते ही अधिकारियों ने उन्हें तुरन्त चम्पारण से चले जाने का आदेश दिया। किन्तु गांधीजी ने इस आदेश को मानने से इन्कार कर दिया तथा किसी भी प्रकार के दंड को भुगतने का फैसला किया। सरकार के इस अनुचित आदेश के विरुद्ध गांधीजी द्वारा अहिंसात्मक प्रतिरोध या सत्याग्रह का यह मार्ग सुनना विरोध का सर्वोत्तम तरीका था। गांधीजी की दृढ़ता के सम्मुख सरकार विवश हो गयी, अतः उसने स्थानीय प्रशासन को अपना आदेश वापस लेने तथा गांधीजी को चम्पारण के गांवों में जाने की छूट देने का निर्देश दिया। इस बीच सरकार ने सारे मामले की जांच करने के लिये एक आयोग का गठन किया तथा गांधीजी को भी इसका सदस्य बनाया गया। गांधीजी, आयोग को यह समझाने में सफल रहे कि *तिनकाठिया पद्धति* समाप्त होनी चाहिये। उन्होंने आयोग को यह भी समझाया कि किसानों से पैसा अवैध रूप से वसूला गया है, उसके लिये किसानों को हरजाना दिया जाये। बाद में एक और समझौते के पश्चात् गोरे बागान मालिक अवैध वसूली का 25 प्रतिशत हिस्सा किसानों को लौटाने पर राजी हो गये। इसके एक दशक के भीतर ही बागान मालिकों ने चम्पारण छोड़ दिया। इस प्रकार गांधीजी ने भारत में सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रथम युद्ध सफलतापूर्वक जीत लिया।

अहमदाबाद मिल हड़ताल (1918)—प्रथम भूख हड़ताल

चम्पारण के पश्चात् गांधीजी ने अहमदाबाद मिल हड़ताल के मुद्दे पर हस्तक्षेप किया। यहां मिल मालिकों और मजदूरों में 'प्लेग बोनस' को लेकर विवाद छिड़ा था। गांधीजी ने मजदूरों को हड़ताल पर जाने तथा 35 प्रतिशत बोनस की मांग करने को कहा। जबकि मिल मालिक, मजदूरों को केवल 20 प्रतिशत बोनस देने के लिये राजी थे। गांधीजी ने मजदूरों को सलाह दी कि वे शांतिपूर्ण एवं अहिंसक ढंग से अपनी हड़ताल जारी रखें। गांधीजी ने मजदूरों के समर्थन में भूख हड़ताल प्रारम्भ करने का फैसला किया। अंबालाल साराभाई की बहन अनुसुइया बेन ने इस संघर्ष में गांधीजी को सक्रिय योगदान प्रदान किया। इस अवसर पर उन्होंनें एक दैनिक समाचार पत्र का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया। गांधीजी के अनशन पर बैठने के फैसले से मजदूरों के उत्साह में वृद्धि हुई तथा उनका संघर्ष तेज हो गया। मजबूर होकर मिल मालिक समझौता करने को तैयार हो गये तथा सारे मामले को एक ट्रिब्यूनल को सौंप दिया गया। जिस मुद्दे को लेकर हड़ताल प्रारम्भ हुई थी, ट्रिब्यूनल के फैसले से वह समाप्त हो गया। ट्रिब्यूनल ने मजदूरों के पक्ष में निर्णय देते हुये मिल मालिकों को 35 प्रतिशत बोनस मजदूरों को भुगतान करने का फैसला सुनाया। गांधीजी की यह दूसरी प्रमुख विजय थी।

खेड़ा सत्याग्रह (1918)—प्रथम असहयोग

वर्ष 1918 के भीषण दुर्भिक्ष के कारण गुजरात के खेड़ा जिले में पूरी फसल बरबाद हो गयी, फिर भी सरकार ने किसानों से मालगुजारी वसू करने की प्रक्रिया जारी रखी। 'राजस्व संहिता' के अनुसार, यदि फसल उत्पादन, कुल उत्पाद के एक-चौथाई से भी कम हो तो किसानों का रा पूरी तरह माफ कर दिया जाना चाहिए, किन्तु सरकार ने किसानों का रा माफ करने से इन्कार कर दिया। फलस्वरूप गांधीजी ने किसानों को अदा न करने तथा सरकार के दमनकारी कानून के खिलाफ संघ की प्रेरणा दी। खेड़ा जिले के युवा अधिवक्ता वल्लभभाई पटेल, याज्ञिक तथा कई अन्य युवाओं ने गांधीजी के साथ खेड़ा के गांवों प्रारम्भ किया। इन्होंने किसानों को लगान न अदा करने की शप गांधीजी ने घोषणा की कि यदि सरकार गरीब किसानों का लग दे तो लगान देने में सक्षम किसान स्वेच्छा से अपना लगान अ दूसरी ओर सरकार ने लगान वसूलने के लिये दमन का सहा स्थानों पर किसानों की संपत्ति कुर्क कर ली गयी तथा उन जब्त कर लिया गया। इसी बीच सरकार ने अधिकारियों दिया कि लगान उन्हीं से वसूला जाये जो लगान दे सक से गांधीजी का उद्देश्य पूरा हो गया तथा आंदोलन स

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

1919 के मॉण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार

इस कारण भारतीयों के असंतोष को दूर करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने प्रयास शुरू कर दिये। 12 जुलाई, 1917 को एडविन मॉण्टेग्यू ने हाउस ऑफ कॉमन्स में एक बहस के दौरान उस सम्पूर्ण व्यवस्था पर करारा प्रहार किया जिसके अंतर्गत भारत पर शासन किया जा रहा था। उसने भारतीयों द्वारा अपने देश की शासन व्यवस्था के संबंध में अधिक भागीदारी की मांग का भी समर्थन किया इसके शीघ्र बाद ही मॉण्टेग्यू को भारत विषयक सचिव के रूप में नियुक्त किया गया। 20 अगस्त, 1917 को उन्होंने हाउस ऑफ कॉमन्स में भारत में ब्रिटिश नीतियों के उद्देश्य को परिभाषित करते हुए ऐतिहासिक घोषणा की। मॉण्टेग्यू घोषणा का आधारभूत तत्व "उत्तरदायी सरकार" थी, जिसमें शासक, जनता के निर्वाचित सदस्यों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। मॉण्टेग्यू ने अपनी घोषणा को क्रियान्वित करने की दिशा में, भारत में "विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के लोगों के विचार से अवगत होने के लिए नवम्बर 1917 में भारत की यात्रा की। इन्हीं चर्चाओं के आधार पर भारतीय संवैधानिक सुधारों पर एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की गई, जिसे जुलाई 918 में प्रकाशित किया गया। रिपोर्ट के निम्नलिखित सुझाव थे—

- उत्तरदायी प्रशासन को सबसे पहले प्रांतों में ही स्थापित किया जाए।
- केंद्रीय सरकार पूरी तरह निरंकुश तथा पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी रहेगी।

रांतीय सरकार की स्वायत्तता के अनुपात में भारत सचिव का नियंत्रण म हो जाएगा।

आधारों पर प्रांतों में द्वैध प्रशासन, केंद्र में अनुत्तरदायी व्यवस्था, य विधान सभाओं में निर्वाचित बहुमत, तथा केंद्र में द्विसदनात्मक ा की सिफारिश की गई।

की मुख्य धाराएं

कार में परिवर्तन (कार्यकारिणी संबंधी): केंद्र में उत्तरदायी कोई प्रयत्न नहीं किया गया, परंतु भारतीयों को अधिक दी गई। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में 8 सदस्यों क्त किए गए और उन्हें विधि, शिक्षा, श्रम, स्वास्थ्य तथा सौंप दिए गए। नए सुधार के अनुसार, विषयों को दिया गया। केंद्रीय सूची में सम्मिलित विषयों पर का अधिकार था। इसमें वे विषय सम्मिलित थे जो

[illegible] भारतीय विधान [illegible] परिवर्तन [illegible] केंद्र में उत्तरदायित्व को [illegible] भारत के लिए सेक्रेटरी ऑफ स्टेट [illegible] का उत्तरदायी बना रहा। फिर भी भारतीय [illegible] अधिक प्रतिनिधिक बनाया गया और पहली बार [illegible] विधायिका स्थापित किया गया। उच्चतम सदन जिसे राज्य परिषद [illegible] द्विसदनीय बनाया गया जिसमें 34 निर्वाचित थे और 26 [illegible] सदस्यों से मिलकर बनाई थी जिनमें 34 निर्वाचितों में से 20 साधारण [illegible] द्वारा मनोनीत होते थे। 34 निर्वाचितों में से 20 साधारण [illegible] मुसलमानों द्वारा 3 यूरोपीयों द्वारा और एक सिक्खों द्वारा चुने [illegible] मनोनीतों में 10 पदाधिकारी तथा 7 अशासनिक होते थे। इस [illegible] का प्रतिवर्ष आंशिक रूप से नवीकरण होता था यद्यपि वे [illegible] वर्ष के लिए बनते थे। इसका प्रधान वाइसराय द्वारा नियुक्त [illegible] गवर्नर-जनरल इस सदन को बुला, स्थगित अथवा भंग कर [illegible]

निम्न सदन को केंद्रीय *विधान सभा* कहते थे। उसमें 145 [illegible] जिनमें 104 निर्वाचित तथा 41 मनोनीत होते थे। मनोनीत में से 26 [illegible] तथा 15 अशासनिक थे। 104 निर्वाचितों में से 52 साधारण निर्वाचन [illegible] में से 32 साम्प्रदायिक क्षेत्रों से (2 सिक्खों एवं 30 मुसलमान) और [illegible] निर्वाचन क्षेत्रों से निर्वाचित किए जाते थे। सभा का कार्यकाल 3 [illegible] परंतु गवर्नर जनरल की इच्छा पर बढ़ाया भी जा सकता था।

दोनों सदनों की शक्तियां समान थीं। किंतु प्रदाय के लिए [illegible] की शक्ति अनन्य रूप से विधानसभा को दी गई थी। केंद्रीय विधान [illegible] की बाबत गवर्नर-जनरल की अध्यारोही शक्तियों को निम्नलिखित [illegible] बनाए रखा गया: (i) कुछ विषयों से सम्बंधित विधेयकों को पुनः [illegible] करने के लिए उसकी पूर्व अनुमति आवश्यक थी (ii) उसे भारतीय [illegible] मंडल द्वारा पारित किसी भी विधेयक को वीटो करने या सम्राट के [illegible] के लिए आरक्षित करने की शक्ति थी। (iii) उसे यह शक्ति थी [illegible] विधानमंडल द्वारा नामंजूर किए गए या पारित न किए गए किसी [illegible] या अनुदान को प्रमाणित कर दे। ऐसे प्रमाणित करने पर उसका इस [illegible] प्रभाव होगा मानो विधानमंडल द्वारा पारित या प्रदत्त है, (iv) वह [illegible] की दशा में अध्यादेश जारी कर सकता था, जिनका अस्थायी अवधि के [illegible] प्रयोग होता था।

प्रांतों में द्वैध शासनः प्रांतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना का प्रय[illegible] किया गया। साथ ही इस बात का ध्यान रखा गया कि प्रांतों के प्रशास[illegible] के लिए गवर्नर का उत्तरदायित्व कम न हो। इसके लिए द्वैध शासन [illegible] द्विशासन की पद्धति का सहारा लिया गया। इसमें प्रांतीय विषयों को [illegible] भागों में बांट दिया गया, आरक्षित तथा हस्तांतरित विषय। आरक्षित विष[illegible] की शासन व्यवस्था गवर्नर के हाथों में थी और हस्तांतरित विषयों का प्रशास[illegible] भारतीय मंत्रियों के पास था।

आरक्षित विषयों में प्रांतों में शांति और व्यवस्था बनाए रखने से संबंधि[illegible] विषय, पुलिस, न्याय, राजस्व, कानून और व्यवस्था, जन सेवाएं, अकाल [illegible] सहायता आदि शामिल थे। हस्तांतरित विषयों के अंतर्गत स्थानीय स्वशास[illegible] जनस्वास्थ्य, सफाई, शिक्षा, उद्योग आदि सम्मिलित किए गए। आरक्षि[illegible] विषयों का प्रशासन गवर्नर, चार सदस्यीय कार्यकारिणी परिषद् के सद[illegible] की सहायता से चलाया करता था। हस्तांतरित विषयों के लिए गवर्नर, प्र[illegible] विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों को मंत्री के रूप में नियुक्त करता थ[illegible] प्रांतीय विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होते थे।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

प्रांतों से सम्बंध रखते थे, उन
और तार, सार्वजनिक, ऋण,
न तथा कार्यप्रणाली इत्यादि
ीय महत्व के विषय थे, जैसे
केकर, प्रशासन, जल संसाधन,
ादि प्रांतीय सूची में थे।
केंद्रीय माने गए।
न मंडल को और अधिक
स्थान नहीं दिया गया।
ऑफ स्टेट के माध्यम से
रतीय विधान मंडल को
ली बार विधान मंडल को
परिषद कहते थे, 60
ौर 26 गवर्नर-जनरल
ण चुनाव क्षेत्रों से 10
रा चुने जाते थे। 26
। इस राज्य परिषद
ये सदस्य प्रायः 5
नियुक्त होता था।
कर सकता था।
145 सदस्य थे
से 26 शासनिक
निर्वाचन क्षेत्रों
और 20 विशेष
ल 3 वर्ष था,
।

लिए मतदान
वेधानमंडल
त रूप में
स्थापित
य विधान
े विचार
थी कि
ेधेयक
प्रकार
ापात
लिए

न
न
।

प्रांतीय विधान मण्डलों में भी परिवर्तन हुए। प्रांतीय परिषदों को अब
परिषदों की संज्ञा दी गई। उनका अधिकार क्षेत्र बढ़ा दिया गया जो
प्रांतों में भिन्न भिन्न था। इन प्रांतीय परिषदों में कम से कम 70
सदस्य निर्वाचित होते थे।

इन विधान परिषदों के चुनाव की विधि सरल थी। प्राथमिक मतदाता
को चुनते थे, परंतु मतदाताओं के लिए अधिक सम्पत्ति की योग्यताएं,
तथा वर्गीय चुनाव मण्डलों को तथा कुछ सम्प्रदायों को विशेष
इन चुनावों की विशेषता थी।

प्रांतों में परिवर्तन: 1793 से भारत राज्य सचिव को भारतीय
खजाने से वेतन मिलता था। उसके कुछ कार्य उससे लेकर एक नए
भारतीय उच्च आयुक्त जिसको भारतीय राजस्व से वेतन मिलना
था, को दे दिए गए। प्रांतों में हस्तांतरित विषयों पर भारत राज्य सचिव
का नियंत्रण कम हो गया यद्यपि केंद्र पर उसका नियंत्रण बना रहा।

रौलेट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह—
प्रथम जन आन्दोलन

विश्व युद्ध की समाप्ति पर, जब भारतीय जनता संवैधानिक सुधारों
का इन्तजार कर रही थी, ब्रिटिश सरकार ने दमनकारी रौलेट एक्ट को जनता
के समक्ष पेश कर दिया, इसे भारतीयों ने अपना घोर अपमान समझा। अपने
पूर्ववर्ती अभियानों से अदम्य व साहसी हो चुके गांधीजी ने फरवरी 1919
में प्रस्तावित रौलेट एक्ट के विरोध में देशव्यापी आंदोलन का आह्वान किया।
इस संवैधानिक प्रतिरोध का जब सरकार पर कोई असर नहीं हुआ तो
गांधीजी ने सत्याग्रह प्रारम्भ करने का निर्णय किया। एक 'सत्याग्रह सभा'
की स्थापना की गयी तथा होमरूल लीग के युवा सदस्यों से सम्पर्क कर अंग्रेजी
शासन के विरुद्ध संघर्ष करने का निर्णय हुआ। प्रचार कार्य प्रारम्भ हो गया।
देशव्यापी हड़ताल, उपवास तथा प्रार्थना सभाओं के आयोजन का फैसला
किया गया। इसके साथ ही कुछ प्रमुख कानूनों की अवज्ञा तथा गिरफ्तारी
देने की योजना भी बनाई गयी।

आन्दोलन के इस मोड़ के लिये कई कारण थे जो निम्नानुसार हैं—

(i) जन सामान्य को आन्दोलन के लिये एक स्पष्ट दिशा-निर्देश प्राप्त
हुआ। अब वे अपनी समस्याओं की केवल मौखिक अभिव्यक्ति के स्थान पर
प्रत्यक्ष कार्यवाई कर सकते थे।

(ii) इसके कारण किसान, शिल्पकार और शहरी निर्धन वर्ग सक्रियता
से आंदोलन से जुड़ गया। उनकी यह सक्रियता आगे के आंदोलनों में भी
बनी रही।

(iii) राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष स्थायी रूप से जनसामान्य से सम्बद्ध
हो गया। गांधीजी ने स्पष्ट किया कि अनशन की प्रासंगिकता तभी है जब
तभी भारतीय जागृत होकर सक्रियता से राजनीतिक प्रक्रिया में सहभागी
बनें।

सत्याग्रह प्रारम्भ करने के लिये 6 अप्रैल की तारीख तय की गयी।
किन्तु तारीख की गलतफहमी के कारण सत्याग्रह प्रारम्भ होने से पहले ही
आंदोलन ने हिंसक स्वरूप धारण कर लिया। कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली,
अहमदाबाद इत्यादि स्थानों में बड़े पैमाने पर हिंसा हुई तथा अंग्रेज-विरोधी
प्रदर्शन आयोजित किये गये। प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान सरकारी दमन,
बलपूर्वक नियुक्तियों तथा कई कारणों से त्रस्त जनता ने पंजाब में हिंसात्मक
प्रतिरोध प्रारम्भ कर दिया तथा परिस्थिति अत्यन्त विस्फोटक हो गयीं।
अमृतसर और लाहौर में तो स्थिति पर नियंत्रण पाना मुश्किल हो गया। मजबूर
होकर सरकार को सेना का सहारा लेना पड़ा। गांधीजी ने पंजाब जाकर
यथास्थिति को संभालने का प्रयत्न किया, किन्तु उन्हें बम्बई भेज दिया।
तत्पश्चात् 13 अप्रैल 1919 को अंग्रेजी सरकार का वह बर्बर और घिनौना
रूप सामने आया जिसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में एक
रक्तरंजित धब्बा लगा दिया।

जलियांवाला बाग हत्याकांड (13 अप्रैल 1919)

13 अप्रैल 1919 को बैशाखी के दिन अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। सभा में भाग लेने वाले अधिकांश लोग आसपास के गांवों से आये हुये ग्रामीण थे, जो सरकार द्वारा शहर में आरोपित प्रतिबंध से बेखबर थे। ये लोग 10 अप्रैल 1919 को सत्याग्रहियों पर गोली चलाने तथा अपने नेताओं डा. सत्यपाल व डा. किचलू को पंजाब से बलात् बाहर भेजे जाने का विरोध कर रहे थे। जनरल डायर ने इस सभा के आयोजन को सरकारी आदेश की अवहेलना समझा तथा सभा स्थल को सशस्त्र सैनिकों के साथ घेर लिया। डायर ने बिना किसी पूर्व चेतावनी के सभा पर गोलियां चलाने का आदेश दे दिया। लोगों पर तब तक गोलियां बरसायी गयीं, जब तक सैनिकों की गोलियां समाप्त नहीं हो गयीं। सभा स्थल के सभी निकास मार्गों के सैनिकों द्वारा घिरे होने के कारण सभा में सम्मिलित निहत्थे लोग चारों ओर से गोलियों से छलनी होते रहे। इस घटना में लगभग 1000 लोग मारे गये, जिसमें युवा, महिलायें, बूढ़े, बच्चे सभी शामिल थे। जलियांवाला बाग हत्याकांड से पूरा देश स्तब्ध रह गया। वहशी क्रूरता ने देश को मौन कर दिया। पूरे देश में बर्बर हत्याकांड की भर्त्सना की गयी। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने विरोध स्वरूप अपनी 'नाइटहुड' की उपाधि त्याग दी तथा शंकरराम नागर ने वायसराय की कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे दिया। अनेक स्थानों पर सत्याग्रहियों ने अहिंसा का मार्ग त्यागकर हिंसा का मार्ग अपनाया, जिससे 18 अप्रैल 1919 को गांधीजी ने अपना सत्याग्रह समाप्त घोषित कर दिया क्योंकि उनके सत्याग्रह में हिंसा का कोई स्थान नहीं था।

सरकार ने अत्याचारी अपराधियों को दंडित करने के स्थान पर उनका पक्ष लिया। जनरल डायर को सम्मानित किया गया।

खिलाफत और असहयोग आंदोलन

1919 से 1922 के मध्य अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध दो सश
जनआंदोलन चलाये गये। ये आंदोलन थे—खिलाफत एवं असह
आंदोलन हालांकि ये दोनों आंदोलन पृथक-पृथक मुद्दों को लेकर प्रारम्
थे किन्तु दोनों ने ही संघर्ष के एक ही तरीके 'अहिंसक असहयोग' क
अपनाया। यद्यपि खिलाफत आंदोलन, भारतीय राजनीति से प्रत्यक्ष
सम्बद्ध नहीं था। किन्तु इसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को एक
पृष्ठभूमि प्रदान की तथा अंग्रेजों के विरुद्ध हिन्दू-मुस्लिम एकता को
करने में प्रमुख भूमिका निभायी।

पृष्ठभूमि: इन दोनों आंदोलनों की पृष्ठभूमि उन घटनाओं
में निहित है, जो प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् अंग्रेजी शासन
संदर्भ में उठाये गये कदमों के कारण घटित हुईं थीं। इन आंदो
1919 का वर्ष सबसे महत्वपूर्ण रहा, क्योंकि इस विशेष वर्ष में स
एवं गतिविधियों से भारतीय समाज का लगभग हर वर्ग अस
हो गया। इस सार्वजनिक असंतुष्टि के लिये कई कारण उत्तर
वर्णन निम्नानुसार है—

1. प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् उत्पन्न हुई आर्थि
जनता त्रस्त हो गयी। विश्वयुद्ध के कारण मंहगाई बहु
और नगरों में रहने वाले मध्यम एवं निम्न मध्यवर्ग के लो
सभी मंहगाई से परेशान हो गये। खाद्यानों की भारी कमी
बढ़ने लगी, औद्योगिक उत्पादन कम हो गया तथा
दब गये। समाज का लगभग हर वर्ग आर्थिक परेश
इससे लोगों में ब्रिटिश विरोधी भावनायें जागृत हुईं।
से भी हजारों लोग मारे गये।

2. रौलेट एक्ट, पंजाब में मार्शल लॉ का अ
बाग हत्याकांड जैसी घटनाओं ने विदेशी शासव
को उजागर कर दिया।

3. पंजाब में ज्यादतियों के संबंध में हंट

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...क प्रांतों से सम्बंध रखते थे, जैसे ...ग्रक और तार, सार्वजनिक ऋण, ...कानून तथा कार्यप्रणाली इत्यादि ...रांतीय महत्व के विषय थे, जैसे ...भूमिकर, प्रशासन, जल संसाधन ...इत्यादि प्रांतीय सूची में थे। जो ...भी केंद्रीय माने गए। ...धान मंडल को और अधिक ...को स्थान नहीं दिया गया। ...ी ऑफ स्टेट के माध्यम से ...भारतीय विधान मंडल को ...पहली बार विधान मंडल ...त्य परिषद कहते थे, 60 ...और 26 गवर्नर-जनरल ...रण चुनाव क्षेत्रों से 10 ...द्वारा चुने जाते थे। 26 ...थे। इस राज्य परिषद ...ये सदस्य प्रायः 5 ...नियुक्त होता था। ...त कर सकता था। ...में 145 सदस्य थे ...ों से 26 शासनिक ...ण निर्वाचन क्षेत्रों ...और 20 विशेष ...काल 3 वर्ष था, ...था।

...लिए मतदान ...विधानमंडल ...खेत रूप में ...नः स्थापित ...ीय विधान ...के विचार ...थी कि ...विधेयक ...प्रकार ...भापात ...लिए

...ात्न ...न ...ा

...ीय विधान मण्डलों में भी परिवर्तन हुए। प्रांतीय परिषदों को अब ...सदस्यों की संख्या दी गई। उनका अधिकार क्षेत्र बढ़ा दिया गया जो ...परिषदों में निहित था। इन प्रांतीय परिषदों में कम से कम 70 ...सदस्य निर्वाचित होते थे।

...विधान परिषदों के चुनाव की विधि सरल थी। प्राथमिक मतदाता ...थे, परंतु मतदाताओं के लिए अधिक सम्पत्ति की योग्यताएं, ...तथा वर्गीय चुनाव मण्डलों को तथा कुछ सम्प्रदायों को विशेष ...चुनावों की विशेषता थी।

...परिवर्तनः 1793 से भारत राज्य सचिव को भारतीय ...वेतन मिलता था। उसके कुछ कार्य उससे लेकर एक नए ...भारतीय उच्च आयुक्त जिसको भारतीय राजस्व से वेतन मिलना ...दिए गए। प्रांतों में हस्तांतरित विषयों पर भारत राज्य सचिव ...कम हो गया यद्यपि केंद्र पर उसका नियंत्रण बना रहा।

रौलेट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह—प्रथम जन आन्दोलन

...युद्ध की समाप्ति पर, जब भारतीय जनता संवैधानिक सुधारों ...कर रही थी, ब्रिटिश सरकार ने दमनकारी रौलेट एक्ट को जनता ...देश पर लाद दिया, इसे भारतीयों ने अपना घोर अपमान समझा। अपने ...अभियानों से अदम्य व साहसी हो चुके गांधीजी ने फरवरी 1919 ...रौलेट एक्ट के विरोध में देशव्यापी आंदोलन का आह्वान किया। ...संवैधानिक प्रतिरोध का जब सरकार पर कोई असर नहीं हुआ तो ...ने सत्याग्रह प्रारम्भ करने का निर्णय किया। एक 'सत्याग्रह सभा' ...की गयी तथा होमरूल लीग के युवा सदस्यों से सम्पर्क कर अंग्रेजी ...के विरुद्ध संघर्ष करने का निर्णय हुआ। प्रचार कार्य प्रारम्भ हो गया। ...हड़ताल, उपवास तथा प्रार्थना सभाओं के आयोजन का फैसला ...गया। इसके साथ ही कुछ प्रमुख कानूनों की अवज्ञा तथा गिरफ्तारी ...की योजना भी बनाई गयी।

...आन्दोलन के इस मोड़ के लिये कई कारण थे जो निम्नानुसार हैं—

(i) जन सामान्य को आन्दोलन के लिये एक स्पष्ट दिशा-निर्देश प्राप्त हुआ। अब वे अपनी समस्याओं की केवल मौखिक अभिव्यक्ति के स्थान पर ...कार्यवाई कर सकते थे।

(ii) इसके कारण किसान, शिल्पकार और शहरी निर्धन वर्ग सक्रियता ...आंदोलन से जुड़ गया। उनकी यह सक्रियता आगे के आंदोलनों में भी ...रही।

(iii) राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष स्थायी रूप से जनसामान्य से सम्बद्ध ...हो गया। गांधीजी ने स्पष्ट किया कि अनशन की प्रासंगिकता तभी है जब ...सभी भारतीय जागृत होकर सक्रियता से राजनीतिक प्रक्रिया में सहभागी ...हों।

सत्याग्रह प्रारम्भ करने के लिये 6 अप्रैल की तारीख तय की गयी। किन्तु तारीख की गलतफहमी के कारण सत्याग्रह प्रारम्भ होने से पहले ही आंदोलन ने हिंसक स्वरूप धारण कर लिया। कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, अहमदाबाद इत्यादि स्थानों में बड़े पैमाने पर हिंसा हुई तथा अंग्रेज-विरोधी प्रदर्शन आयोजित किये गये। प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान सरकारी दमन, बलपूर्वक नियुक्तियों तथा कई कारणों से त्रस्त जनता ने पंजाब में हिंसात्मक प्रतिरोध प्रारम्भ कर दिया तथा परिस्थिति अत्यन्त विस्फोटक हो गयीं। अमृतसर और लाहौर में तो स्थिति पर नियंत्रण पाना मुश्किल हो गया। मजबूर होकर सरकार को सेना का सहारा लेना पड़ा। गांधीजी ने पंजाब जाकर परिस्थिति को संभालने का प्रयत्न किया, किन्तु उन्हें बम्बई भेज दिया। तत्पश्चात् 13 अप्रैल 1919 को अंग्रेजी सरकार का वह बर्बर और घिनौना रूप सामने आया जिसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में एक चमत्कारिक धब्बा लगा दिया।

जलियांवाला बाग हत्याकांड (13 अप्रैल 1919)

13 अप्रैल 1919 को बैसाखी के दिन अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। सभा में भाग लेने वाले अधिकांश लोग आसपास के गांवों से आये हुये ग्रामीण थे, जो सरकार द्वारा शहर में आरोपित प्रतिबंध से बेखबर थे। ये लोग 10 अप्रैल 1919 को सत्याग्रहियों पर गोली चलाने तथा अपने नेताओं डा. सत्यपाल व डा. किचलू को पंजाब से बलात् बाहर भेजे जाने का विरोध कर रहे थे। जनरल डायर ने इस सभा के आयोजन को सरकारी आदेश की अवहेलना समझा तथा सभा स्थल को सशस्त्र सैनिकों के साथ घेर लिया। डायर ने बिना किसी पूर्व चेतावनी के सभा पर गोलियां चलाने का आदेश दे दिया। लोगों पर तब तक गोलियां बरसायी गयीं, जब तक सैनिकों की गोलियां समाप्त नहीं हो गयीं। सभा स्थल के सभी निकास मार्गों के सैनिकों द्वारा घिरे होने के कारण सभा में सम्मिलित निहत्थे लोग चारों ओर से गोलियों से छलनी होते रहे। इस घटना में लगभग 1000 लोग मारे गये, जिसमें युवा, महिलायें, बूढ़े, बच्चे सभी शामिल थे। जलियांवाला बाग हत्याकांड से पूरा देश स्तब्ध रह गया। वहशी क्रूरता ने देश को मौन कर दिया। पूरे देश में बर्बर हत्याकांड की भर्त्सना की गयी। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने विरोध स्वरूप अपनी 'नाइटहुड' की उपाधि त्याग दी तथा शंकरराम नागर ने वायसराय की कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे दिया। अनेक स्थानों पर सत्याग्रहियों ने अहिंसा का मार्ग त्यागकर हिंसा का मार्ग अपनाया, जिससे 18 अप्रैल 1919 को गांधीजी ने अपना सत्याग्रह समाप्त घोषित कर दिया क्योंकि उनके सत्याग्रह में हिंसा का कोई स्थान नहीं था।

सरकार ने अत्याचारी अपराधियों को दंडित करने के स्थान पर उनव पक्ष लिया। जनरल डायर को सम्मानित किया गया।

खिलाफत और असहयोग आंदोलन

1919 से 1922 के मध्य अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध दो स जनआंदोलन चलाये गये। ये आंदोलन थे—खिलाफत एवं अस आंदोलन हालांकि ये दोनों आंदोलन पृथक-पृथक मुद्दों को लेकर प्रार थे किन्तु दोनों ने ही संघर्ष के एक ही तरीके 'अहिंसक असहयोग' अपनाया। यद्यपि खिलाफत आंदोलन, भारतीय राजनीति से प्रत्यक्ष सम्बद्ध नहीं था। किन्तु इसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को एक पृष्ठभूमि प्रदान की तथा अंग्रेजों के विरुद्ध हिन्दू-मुस्लिम एकता को करने में प्रमुख भूमिका निभायी।

पृष्ठभूमिः इन दोनों आंदोलनों की पृष्ठभूमि उन घटनाओं में निहित है, जो प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् अंग्रेजी शासन संदर्भ में उठाये गये कदमों के कारण घटित हुईं थीं। इन आंदे 1919 का वर्ष सबसे महत्वपूर्ण रहा, क्योंकि इस विशेष वर्ष में स एवं गतिविधियों से भारतीय समाज का लगभग हर वर्ग अस हो गया। इस सार्वजनिक असंतुष्टि के लिये कई कारण उत्तर वर्णन निम्नानुसार है—

1. प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् उत्पन्न हुई आर्थि जनता त्रस्त हो गयी। विश्वयुद्ध के कारण मंहगाई बहु और नगरों में रहने वाले मध्यम एवं निम्न मध्यवर्ग के लो सभी मंहगाई से परेशान हो गये। खाद्यानों की भारी कमी बढ़ने लगी, औद्योगिक उत्पादन कम हो गया तथा दब गये। समाज का लगभग हर वर्ग आर्थिक परेश इससे लोगों में ब्रिटिश विरोधी भावनायें जागृत हुईं। से भी हजारों लोग मारे गये।

2. रौलेट एक्ट, पंजाब में मार्शल लॉ का अ बाग हत्याकांड जैसी घटनाओं ने विदेशी शासक को उजागर कर दिया।

3. पंजाब में ज्यादतियों के संबंध में हंटर

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सब्जी आखें खोल दीं। उधर ब्रिटिश संसद विशेषकर हाउस आफ लार्ड्स में जनरल डायर के कृत्यों को उचित ठहराया गया तथा 'मार्निंग पोस्ट' ने डायर के लिये 30 हजार पौंड की धनराशि एकत्रित की। ये सारी गतिविधियां अंग्रेजी शासन का पर्दाफाश करने के लिये पर्याप्त थी।

4 1919 के माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों का वास्तविक मकसद भी द्वैध शासन प्रणाली लागू करना था न कि जनता को राहत पहुंचाना। इन सुधारों से स्वशासन की मांग कर रहे राष्ट्रवादियों को अत्यन्त निराशा हुई।

विश्वयुद्ध के पश्चात् हुई कई अन्य घटनाओं ने भी हिन्दू-मुस्लिम राजनीतिक एकीकरण के लिये एक व्यापक पृष्ठभूमि तैयार की—(i) लखनऊ समझौता (1916)—इससे कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग में सहयोग बढ़ा। (ii) रौलेट एक्ट के विरुद्ध प्रदर्शन में समाज के अन्य वर्गों के साथ ही हिन्दू तथा मुसलमान भी एक-दूसरे के करीब आ गये। (iii) मौलिक राष्ट्रवादी मुसलमान जैसे— मोहम्मद अली, अबुल कलाम आजाद, हकीम अजमल खान एवं हसन इमाम इत्यादि अलीगढ़ स्कूल के रूढ़िवादी विचारों से मुक्त होकर ज्यादा प्रभावशाली हो गये। जिसके कारण मुस्लिम लीग पर अलीगढ़ स्कूल का प्रभाव कम होने लगा। युवा राष्ट्रवादियों ने भी उग्रवादी राष्ट्रवाद की वकालत की तथा राष्ट्रवादी आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाने पर बल दिया। वे साम्राज्य विरोधी भावनाओं से गहरे प्रभावित थे तथा साम्राज्यवादी दासता को समाप्त करना चाहते थे।

इन्हीं सब गतिविधियों के परिदृश्य में खिलाफत का जन्म हुआ जिसके साथ ही ऐतिहासिक असहयोग आंदोलन, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के पटल पर उभरा।

खिलाफत का मुद्दा: खिलाफत के मुद्दे ने मौलिक राष्ट्रवादी रुझान के उदय की प्रक्रिया को, मुसलमानों की युवा पीढ़ी तथा उन मुस्लिम शोधार्थियों के मध्य सुलभ बना दिया, जिनमें धीरे-धीरे ब्रिटिश विरोधी भावनायें जागृत हो रही थीं। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत तुर्की के प्रति अंग्रेजों के रवैये से भारतीय मुसलमान अत्यन्त उत्तेजित हो गये। न केवल भारतीय मुसलमान, अपितु सम्पूर्ण मुस्लिम जगत तुर्की के खलीफा को अपना धार्मिक प्रमुख मानता था, ऐसे में स्वाभाविक था कि मुसलमानों की सहानुभूति तुर्की के साथ थी। प्रथम विश्व युद्ध में तुर्की ने ब्रिटेन के विरुद्ध जर्मनी तथा आस्ट्रिया का साथ दिया था। अतः युद्ध की समाप्ति के उपरांत ब्रिटेन ने तुर्की के प्रति कठोर रवैया अपनाया। तुर्की को विभाजित कर दिया गया तथा खलीफा को पद से हटा दिया गया। ब्रिटेन के इस कदम से पूरे विश्व के मुसलमानों में रोष की लहर दौड़ गयी। भारत में भी मुसलमानों ने ब्रिटेन के इस कदम की तीव्र आलोचना की तथा अंग्रेजों के सम्मुख निम्न मांगे रखीं—(i) मुसलमानों के धार्मिक स्थलों पर खलीफा के प्रभुत्व को पुर्नस्थापित किया जाये, (ii) खलीफा को, प्रदेशों की पुर्नव्यवस्था कर अधिक भू-क्षेत्र प्रदान किया जाये। 1919 के प्रारम्भ में अली बंधुओं-मोहम्मद अली तथा शौकत अली, मौलाना आजाद, अजमल खान तथा हसरत मोहानी के नेतृत्व में 'खिलाफत कमेटी' का गठन किया गया, जिसका उद्देश्य तुर्की के प्रति ब्रिटेन के रवैये को बदलने के लिये ब्रिटेन पर दबाव डालना था। इस प्रकार देशव्यापी प्रदर्शन के लिये एक व्यापक पृष्ठभूमि तैयार हो गयी।

खिलाफत का विकास—असहयोग कार्यक्रम: कुछ समय तक खिलाफत के नेता, इस आंदोलन के पक्ष में सभाओं, धरनों एवं याचिकाओं तक ही सीमित रहे। किन्तु बाद में यह मांग जोर पकड़ने लगी कि अंग्रेजी शासन के विरोध में सशक्त प्रदर्शन किये जायें तथा अंग्रेजों के साथ हर प्रकार से असहयोग की अवधारणा का पालन किया जाये। इस प्रकार खिलाफत का रुख धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगा। नवम्बर 1919 में खिलाफत का अखिल भारतीय सम्मेलन दिल्ली में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में अंग्रेजी वस्तुओं के बहिष्कार की मांग की गयी। साथ ही खिलाफत के नेताओं ने यह भी स्पष्ट शब्दों में कहा, कि युद्धोपरांत संधि की शर्तें, जब तक तुर्की के अनुकूल नहीं बनायी जायेंगी तब तक वे सरकार के साथ किसी प्रकार का सहयोग नहीं करेंगे। गांधीजी ने, जो कि अखिल भारतीय खिलाफत कमेटी के अध्यक्ष थे, इस मुद्दे को भारतीयों में एकता स्थापित करने के रूप में देखा।

खिलाफत के प्रश्न पर कांग्रेस का रवैया: यह बात स्पष्ट थी कि खिलाफत आंदोलन की सफलता के लिये उसे कांग्रेस का समर्थन अत्यन्त आवश्यक है। हालांकि गांधीजी खिलाफत के प्रति पूर्ण सहानुभूति तथा इस मुद्दे को लेकर सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह तथा असहयोग प्रारम्भ करना चाहते थे, किन्तु कांग्रेस में इस मुद्दे को लेकर सर्वसम्मति का अभाव था। बाल गंगाधर तिलक ने धार्मिक मुद्दों पर मुस्लिम आंदोलन के साथ संधि करने का विरोध किया, साथ ही वे 'सत्याग्रह' को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग किये जाने के प्रति भी आशंकित थे। प्रोफेसर सतीश चन्द्र के अनुसार, गांधीजी ने तिलक को सत्याग्रह की विशिष्टताओं से परिचित कराने के लिये अथक प्रयास किया तथा इसकी खूबियों के संबंध में फैली सभी शंकाओं को दूर कर दिया। इसके साथ उन्होंने खिलाफत के साथ मुस्लिम समुदाय से संधि करने का औचित्य भी तिलक को समझाया। अन्य राज्यों में भी गांधीजी के असहयोग कार्यक्रम का विरोध किया। यद्यपि बाद में कांग्रेस इस मुद्दे पर झुक गयी तथा उसने गांधीजी के असहयोग कार्यक्रम के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान कर दी। कांग्रेस द्वारा खिलाफत मुद्दे पर लचीला रुख अपनाने तथा गांधीजी के असहयोग कार्यक्रम को समर्थन प्रदान के कई कारण थे—

- यह महसूस किया गया कि हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिये मुस्लिम समुदाय को राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा में लाने का यह एक अवसर है। इस प्रकार अब समाज के विभिन्न वर्ग—हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, किसान, शिल्पकार, पूंजीपति, जनजातियां, महिलायें, युवा, किसी इत्यादि के लोगों ने विदेशी शासन की उपस्थिति को महसूस किया तथा अपनी दुर्दशा के लिये उसे उत्तरदायी मानते हुये अपने अधिकारों के लिये संघर्ष की प्रेरणा ली।
- संवैधानिक तरीके से संघर्ष जारी रखने पर कांग्रेस का विश्वास धीरे-धीरे कम होता जा रहा था। विशेष रूप से पंजाब की घटनाओं के बाद में हंटर कमीशन की भेदभावपूर्ण व दमनकारी सिफारिशों से सरकार के प्रति उसका मोहभंग हो गया था।
- कांग्रेस इस बात से भलीभांति परिचित थी कि भारतीय अपने असंतोष की अभिव्यक्ति के लिये उचित अवसर की तलाश में थे।

कांग्रेस को मुस्लिम लीग का समर्थन: राजनैतिक प्रश्न के मुद्दे पर आंदोलन चलाने के लिये मुस्लिम लीग ने भी कांग्रेस को पूर्ण समर्थन देने का निश्चय किया।

फरवरी 1920 1920 के प्रारम्भ में हिन्दू और मुसलमानों के एक संयुक्त प्रतिनिधिमंडल ने वायसराय से मुलाकात की तथा उनसे खिलाफत के मुद्दे को हल करने की मांग की, किन्तु इस मिशन से कोई लाभ नहीं हुआ।

फरवरी 1920 में गांधीजी ने घोषणा की कि पंजाब का मुद्दा महत्वपूर्ण है। अतः सरकार अमृतसर हत्याकांड के लिये खेद प्रकट करे तथा पंजाब में हुयी ज्यादतियों का निराकरण करे। तुर्की के प्रति अपने व्यवहार में सुधार करे तथा भारतीयों को संतुष्ट करने के लिये कोई नवीन योजना प्रस्तुत करे। साथ ही उन्होंने चेतावनी दी कि अगर सरकार इन मांगों को स्वीकार नहीं करेगी तो वे असहयोग आंदोलन प्रारम्भ कर देंगे।

मई 1920 तुर्की के साथ मई 1920 में 'सेब्रीज की संधि' हुयी। इस संधि के द्वारा तुर्की का विभाजन कर दिया गया।

जून 1920 में केंद्रीय खिलाफत समिति का अधिवेशन इलाहाबाद में हुआ। इस अधिवेशन में स्कूलों, कालेजों तथा न्यायालयों का बहिष्कार करने का निर्णय लिया गया तथा गांधीजी को आंदोलन का नेतृत्व करने का सौंपा गया।

31 अगस्त 1920 खिलाफत समिति ने औपचारिक तौर पर असहयोग आंदोलन की शुरुआत की (दुर्भाग्यवश 1 अगस्त 1920 को बाल गंगाधर तिलक का निधन हो गया)।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

दिसम्बर 1920 में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ता में आयोजित हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने पंजाब एवं खिलाफत के मुद्दे को न्याय तथा स्वराज्य की स्थापना होने तक असहयोग कार्यक्रम को स्वीकृति प्रदान की। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने निम्न कार्यक्रम को स्वीकृति प्रदान की।

- सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार।
- अदालतों का बहिष्कार तथा पंचायतों के माध्यम से न्याय का कार्य।
- विधान परिषदों का बहिष्कार (यद्यपि इस मुद्दे पर कांग्रेस के नेताओं में मतभेद था तथा वे इस कार्यक्रम को असहयोग कार्यक्रम में सम्मिलित किये जाने का विरोध कर रहे थे। विरोधियों में सबसे प्रमुख नाम सी.आर. दास का था। इन्हीं दिनों (नवम्बर 1920 में) बाद विधान परिषदों के चुनाव हुए थे। लेकिन बहिष्कार के विचार से असहमति रखने वाले नेताओं ने कांग्रेस के अनुशासन का पालन किया और चुनावों का बहिष्कार किया।
- उपाधिधारी नागरिकों ने भी इन चुनावों में भाग नहीं लिया)।
- विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तथा इसके स्थान पर खादी के उपयोग को प्रोत्साहन दिया गया।
- चरखा कातने को भी प्रोत्साहन दिया गया।
- सरकारी उपाधियों तथा अवैतनिक पदों का परित्याग, सरकारी नौकरी का परित्याग, सरकारी करों का भुगतान न करना, सरकारी तथा निजी उत्सवों का बहिष्कार तथा सैनिक, मजदूर व क्लर्कों का सेना, रेल, खानों में कार्य करने के दौरान कार्यकर्ताओं ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को सम्पूर्ण आंदोलन के दौरान कार्यकर्ताओं ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को सम्पूर्ण आंदोलन में अस्पृश्यता को दूर करने का सराहनीय प्रयास किया।

कार्यक्रम में अहिंसा को सर्वोपरि रखा गया।

दिसम्बर 1920 में कांग्रेस का अधिवेशन नागपुर में हुआ। इस अधिवेशन में—

(i) असहयोग आंदोलन के कार्यक्रम का अनुमोदन कर दिया गया।

(ii) कांग्रेस के सिद्धांत में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआः कांग्रेस ने शांतिपूर्ण तरीके से स्वशासन प्राप्ति के अपने लक्ष्य के स्थान पर शांतिपूर्ण तरीके से स्वराज्य प्राप्ति को अपना लक्ष्य घोषित किया। इस परिवर्तन के माध्यमित तरीके से न्यायोचित तरीके से बाहर जन संघर्ष की अवधारणा को स्वीकार कर कांग्रेस ने संवैधानिक दायरे से बाहर जन संघर्ष की अवधारणा को स्वीकार किया।

(iii) कुछ महत्वपूर्ण संगठनात्मक परिवर्तन भी किये गयेः अब कांग्रेस के कार्यों को देखने के लिये 15 सदस्यीय कार्यकारिणी समिति गठित की गयी। स्थानीय स्तर पर कार्यक्रमों के वास्तविक क्रियान्वयन के लिये भाषायी आधार पर प्रदेश कांग्रेस कमेटियों का गठन किया गया। गांवों और कस्बों में भी कांग्रेस समितियों का गठन किया गया, सदस्यता शुल्क चार आना साल कर दी गयी।

(iv) गांधीजी ने घोषणा की कि यदि पूरी तन्मयता से असहयोग आंदोलन चलाया गया तो एक वर्ष के भीतर स्वराज्य का लक्ष्य प्राप्त हो जायेगा।

क्रांतिकारी आतंकवादियों के कई संगठनों मुख्यतया बंगाल के क्रांतिकारी संगठनों ने कांग्रेस के कार्यक्रम को पूर्ण समर्थन देने की घोषणा की। किन्तु इसी समय मोहम्मद अली जिन्ना, एनी बेसेन्ट, जी.एस. कापर्डे एवं बी.सी. पाल ने कांग्रेस छोड़ दी क्योंकि वे संवैधानिक एवं न्यायपूर्ण ढंग से संघर्ष चलाये जाने के पक्षधर थे। जबकि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 'इंडियन नेशनल लिबरल फेडरेशन' का गठन कर लिया तथा इसके पश्चात् राष्ट्रीय राजनीति में उनका योगदान नाममात्र का रह गया।

कांग्रेस द्वारा असहयोग आंदोलन के कार्यक्रम का अनुमोदन करने तथा खिलाफत कमेटी द्वारा इसे पूर्ण समर्थन दिये जाने की घोषणा से इसमें नयी शक्ति का संचार हो गया। इसके पश्चात् वर्ष 1921 और 1922 में पूरे देश में अप्रत्याशित लोकप्रियता मिली।

आंदोलन का प्रसारः गांधीजी ने खिलाफत नेता, अली बंधुओं के साथ पूरे देश का दौरा किया, सैकड़ों सभाओं को संबोधित किया तथा सैकड़ों राजनीतिक कार्यकर्ताओं से विचार विमर्श किया। लगभग 90 हजार छात्रों ने सरकारी स्कूल और कालेजों को छोड़ दिया तथा राष्ट्रीय स्कूल और कालेजों में भर्ती हो गये। उस समय देश में 800 राष्ट्रीय स्कूल और कालेज थे। शिक्षण संस्थाओं के बहिष्कार में पश्चिम बंगाल अग्रणी रहा। कलकत्ता के विद्यार्थियों ने राज्यव्यापी हड़ताल का आयोजन किया। उनकी मांग थी कि स्कूल के प्रबंधक, सरकार से अपना नाता तोड़ ले। पूरे देश में आचार्य नरेन्द्र देव, सी.आर. दास, लाला लाजपत राय, जाकिर हुसैन तथा सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में विभिन्न राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गयी। सुभाष चन्द्र बोस 'नेशनल कालेज कलकत्ता' के प्रधानाचार्य बन गये। जामिया मिलिया, काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ ने भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान दिया। पंजाब, बम्बई, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, बिहार तथा असम में भी इस कार्यक्रम में अमल किया गया।

देश के कई प्रख्यात वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी। इनमें मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, सी.आर. दास, सी. राजगोपालाचारी, सैफुद्दीन किचलू, वल्लभभाई पटेल, आसफ अली, टी. प्रकाशम और राजेन्द्र प्रसाद प्रमुख थे। विदेशी कपड़ों की सार्वजनिक रूप से होली जलाई गयी तथा थोड़े ही समय में विदेशी कपड़ों का आयात घटकर आधा रह गया। विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरने भी दिये गये। विदेशी शराब की दुकानों तथा ताड़ी की दुकानों पर भी धरने आयोजित किये गये। महात्मा गांधी ने *कैसर-ए-हिन्द* का पदक लौटा दिया। कांग्रेस ने अपने कार्यकर्ताओं को कोष इकट्ठा करने का आदेश दिया। 'तिलक स्वराज्य फंड' अपने लक्ष्य से भी आगे निकल गया और उसने एक करोड़ रुपये से ज्यादा धन एकत्रित किया गया। चरखे और खादी का खूब प्रचार हुआ। कांग्रेस की स्वयंसेवी सेनायें समानांतर पुलिस की तरह कार्य करने लगीं।

जुलाई 1921 में कराची में खिलाफत आंदोलन में अली बंधुओं ने घोषणा की कि किसी भी मुसलमान का सेना में रहना धर्म के खिलाफ है। अतः सभी मुसलमानों को सेना से त्यागपत्र दे देना चाहिये। इसके कारण सितम्बर में अली बंधुओं को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। 4 अक्टूबर को गांधीजी ने कांग्रेस के 47 वरिष्ठ नेताओं के साथ एक बयान जारी कर अली बंधुओं के बयान की पुष्टि की तथा सभी भारतीय नागरिकों और सैनिकों से उपनिवेशी शासन से सभी प्रकार के संबंध तोड़ लेने का आह्वान किया। दूसरे दिन कांग्रेस कार्यकारिणी ने भी इसी तरह का प्रस्ताव पारित किया तथा स्थानीय कांग्रेस समितियों को भी इसी तरह का प्रस्ताव पारित करने को कहा गया।

इसके पश्चात् कांग्रेस ने स्थानीय कांग्रेस समितियों को यह इजाजत दे दी कि जब भी उन्हें लगे कि जनता कानून अवज्ञा के लिये तैयार है, वे आंदोलन प्रारंभ कर सकती हैं। इस समय मिदनापुर (बंगाल) तथा गुंटूर (आंध्र) के चिराला-पिराला तथा पेडानंडीपाडू तालुका में 'यूनियन बोर्ड टेक्सेज' के खिलाफ कर अदा न करने का आंदोलन पहले से ही चला रहा था।

असम में चाय बागान के मजदूरों, स्टीमर पर काम करने वाले मजदूरों तथा असम-बंगाल रेलवे के कर्मचारियों ने भी हड़ताल कर दी। बंगाल के एक राष्ट्रवादी नेता जे.एम. सेनगुप्ता ने इस दौरान महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

17 नवम्बर 1921 में 'प्रिंस आफ वेल्स' के भारत दौरे के विरोध में विभिन्न स्थानों पर हड़तालों एवं प्रदर्शनों का आयोजन किया गया। इसके बाद पूरे बम्बई समेत कई स्थानों पर हिंसक वारदातें तथा पुलिस के साथ झड़पें हुईं।

असहयोग आंदोलन, धीरे-धीरे प्रभावी होता जा रहा था। कई स्थानीय आंदोलनों ने इसमें और ऊर्जा भर दी। इनमें अवध किसान आंदोलन (उत्तर प्रदेश), एका आंदोलन (उत्तर प्रदेश) मोपला विद्रोह (मालाबार) तथा पंजाब से महंतों के निष्कासन की मांग को लेकर चलाया गया सिखों का आंदोलन महत्वपूर्ण थे।

सरकार की प्रतिक्रियाः मई 1921 में गांधीजी तथा भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड रीडिंग के मध्य वार्ता आयोजित की गयी। इस वार्ता में रीडिंग

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

स्वराज्य दल

पृष्ठभूमि

स्वराज पार्टी की स्थापना को असहयोग आन्दोलन के स्थगन की प्रतिक्रिया के रूप में समझा जा सकता है। इस पार्टी के प्रारंभिक परिचय के रूप में यही कहा जा सकता है कि इसने कांग्रेस के आन्तरिक मतभेद को स्पष्ट एवं प्रकट अवश्य किया, किन्तु आन्दोलन के स्थगन के उपरान्त उत्पन्न राजनीतिक शून्यता को भरने की चेष्टा भी की। शीघ्र ही आन्तरिक मतभेद ने इसे विघटन के द्वारा पर लाकर खड़ा अवश्य कर दिया, किन्तु लोगों को यह आभास भी करा दिया कि उनकी नीतियों के विरोध एवं कार्यों पर विराम लगाने की क्षमता भारतीय नेताओं में विद्यमान है। पुनः इस सत्यता को अन्ततः स्वीकार कर ही लिया गया कि कांग्रेस का राष्ट्रीय संघर्ष गांधी के ही नेतृत्व में स्थायी है।

महात्मा गांधी ने स्थगन
असहयोग आन्दोलन के स्थगन
चेतना चरमोत्कर्ष पर थी। 12 फरवरी, 1922 को बारदोली की
की इस घोषणा की प्रतिक्रिया में कई कांग्रेसी नेता असंतुष्ट हो
असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रमों से कुछ कांग्रेसी पहले से ही
और 1921 में बनारस में पाल, विट्ठलभाई, चितरंजनदास, जिन्ना,
इत्यादि गुप्त-बैठक द्वारा परिषदों में प्रवेश के बहिष्कार पर
चुके थे। स्थगन के पश्चात् असंतुष्ट वर्ग को खुलकर अपनी
व्यक्त करने का अवसर मिला। वस्तुतः, उक्त वर्ग की इस मनोवृत्ति
परिस्थितियां जिम्मेवार थीं। जालियांवाला बाग-घटना, रौलेट-एक्ट,
परिषद् अधिनियम, 1919—इन घटनाओं से प्रेरित असहयोग की
मध्य अवस्था में ही अवरुद्ध किए जाने पर असन्तुष्टों ने विधान
प्रवेश कर सरकार के कार्यों में बाधा डालने का निश्चय किया।
का तर्क था कि बदली हुई परिस्थितियों में संघर्ष की शुरुआत
के साथ होनी चाहिए। विधान परिषदों के बाहर असहयोग करके
गया; अब परिषदों के अन्दर रहकर इस नीति के परिणाम की प्रतीक्षा
चाहिए।

इसी मानसिकता एवं तर्क के आधार पर असंतुष्ट-वर्ग ने इस
को व्यापक समर्थन दिलाने हेतु प्रयत्न आरम्भ कर दिए। सर्वप्रथम, इस
के मत-भिन्नता की पुष्टि चोथानी कमेटी ने की। दिसंबर, 1922 में हुए
के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से पहली बार चितरंजन दास ने असंतुष्ट
की कार्यवाही के लिए नियोजित स्वराज-संबंधी (परिषदों में प्रवेश हेतु)
रखा, जिसे 60% के विरोधी मत से रद्द कर दिया गया। असल में,
को हर हालत में यह योजना कार्यान्वित करनी थी। इसलिए, उन्होंने
नहीं हारी। चितरंजन दास ने अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया।
मार्च महीने में इलाहाबाद में आनन्द भवन में स्वराज दल की बैठक हुई
इस प्रकार कांग्रेस के अधीन स्वराज दल की स्थापना हुई।

सिद्धान्त एवं कार्यक्रम

दल ने 14 अक्टूबर, 1923 के एक घोषणा-पत्र द्वारा सिद्धान्तों
कार्यक्रम की घोषणा की। स्वराज दल कांग्रेस की ही एक शाखा के
में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों के चुनाव में भाग लेगा तथा
में प्रवेश कर सरकार की नीतियों की आलोचना तथा कार्यों को बाधित
दल का कहना था कि यदि वह अपने इस कार्यक्रम में असफल
पुनःगांधीवादी नीतियां अपना लेगा। दल का विचार था कि सदस्य
निश्चित अवधि में अपनी मांगों की पूर्ति हेतु सरकार पर दबाव डालेंगे
अस्वीकृति की स्थिति में शासन-कार्य असम्भव बना दिया जाएगा।
किसी भी स्थिति में सरकार द्वारा आमंत्रित किसी भी प्रशासनिक
स्वीकृति नहीं की जाएगी। आर.पी. दत्त का कहना है कि "जन-आन्
की कमजोरी को देखते हुए चुनावों और विधान सभाओं का बहिष्कार
करने का फैसला निस्संदेह एक प्रगतिशील कदम था।" स्वराज
में भी दल का विचार स्पष्ट था; ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत
स्टेटस अर्थात् औपनिवेशिक दर्जा की प्राप्ति। स्वराज दल के
तक सीमित नहीं थे। व्यक्तिगत एवं निजी सम्पत्ति की मान्यता
के शोषण से श्रम की तथा श्रम की अनुचित मांगों से पूंजी की
पूंजी व श्रम के हितों के तादात्म्य के सिद्धान्त में विश्वास, वर्ग
की यह भी योजना थी कि 1919 की सुधार योजना को विधा
जाकर अव्यावहारिक तथा असफल बना दिया जाए।
नगरपालिकाओं के चुनाव में हिस्सा लेने, मजदूरों के संगठन
बढ़ाने, ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार, एशियाई देशों के संघ की
चूंकि दल स्वयं को कांग्रेस का ही एक भाग मानता था, इ
के रचनात्मक कार्यों के समर्थन आदि का निर्णय लिया ग

स्वराज दल की अब तक की गतिविधियों के समय
जेल में थे। अब कांग्रेस मतों के आधार पर दो वर्गों में बंट ग

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

परिषद में मंत्रीपद तथा मोतीलाल ने इंडियन सैंडहर्स्ट कमेटी की सदस्यता स्वीकार कर ली। द्वितीय, चितरंजन दास की 1925 में मृत्यु होने से उचित नेतृत्व का अभाव हो गया। तृतीय, साम्प्रदायिकता ने पार्टी में फूट डाल दी। तथाकथित हिन्दूवादी हितों की रक्षा हेतु मालवीय, केलकर बन्धु इत्यादि ने रिस्पांसिविस्ट गुट के साथ सहयोग हेतु निश्चय किया। सत्ता के फेंके हुए टुकड़ों को मुस्लिम सम्प्रदायवादी भी स्वीकार करने में झिझके नहीं। 1924 में सोशलिस्ट दल तो बन ही गया था, 1929 के बाद भी सरकार के प्रति रचनात्मक सहयोग की नीति अपनाने वाले दल का गठन हो गया। इस प्रकार, स्वराज में फूट पड़ गई और अन्ततः साइमन कमीशन के आगमन के बाद, स्वराजिस्ट कांग्रेस में गांधीवादी विचारधारा के अन्तर्गत काम करने लगे।

स्वराज-दल का नकारात्मक प्रभाव भी राष्ट्रीय आन्दोलन पर पड़ा। दल द्वारा मुस्लिमों के लिए पृथक्-निर्वाचन-मण्डल के विरोध तथा चितरंजन दास के सूत्र का गलत अर्थ मुसलमानों ने लिया। वस्तुतः अब उत्तरोत्तर स्थिति ऐसी हो गई, जिसे अंग्रेजों ने हवा भी दी कि हिन्दू तथा मुसलमानों के हित पृथक्-पृथक् समझे जाने लगे और इसकी चरम परिणति द्वि-राष्ट्र-सिद्धान्त में हुई।

निष्कर्ष

इस तरह, असहयोग आन्दोलन के स्थगन से उद्वेलित तथा कांग्रेसियों की लक्ष्य प्राप्ति की भिन्नता का संकेत करने वाला स्वराज दल अपने अस्तित्व की समाप्ति के बाद भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। पूंजीवाद की ओर उन्मुख होते हुए तथा साम्प्रदायिकता बढ़ाने का आरोप लगाने के बावजूद, इस दल के माध्यम से राष्ट्रवादियों ने अपनी प्रशासनिक योग्यता सिद्ध की; अंग्रेजी नीति को अन्यायपूर्ण बताया और गांधीवादी विचारधारा स्वीकार एक बार पुनः भारत के भविष्य का निर्धारण इसी चिन्तन के अन्तर्गत कर दिया गया।

क्रांतिकारी आतंकवाद की वापसी

प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ से लेकर 1922 तक क्रान्तिकारी आन्दोलन लगभग निष्क्रिय रहा। इस समय में आन्दोलन के निष्क्रिय रहने के दो प्रमुख कारण थे—(1) कांग्रेस में गरमपंथियों और नरमपंथियों के बीच विश्वयुद्ध की शुरुआत के समय समझौता हो गया। दोनों गुटों में 1916 में समझौता हो जाने के बाद उग्रवादी शान्त हो गए और क्रान्तिकारी आन्दोलन रुक-सा गया। (2) महात्मा गांधी के रूप में भारतीय राजनीति में एक ऐसे व्यक्ति का उद्भव हुआ, जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को अहिंसारूपी एक नया अस्त्र दिया। अपनी साफ-सुथरी नीतियों के कारण गांधीजी राजनीतिक गतिविधियों के केन्द्र बिन्दु बन गए और 1917 से लेकर 1947 तक भारतीय राजनीति उन्हीं के इर्द-गिर्द चक्कर काटती रही। ऐसे में अन्य नेताओं और दलों का महत्त्व बहुत घट गया।

1922 में गांधीजी ने चौरी-चौरा के हिंसात्मक काण्ड के कारण असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया। आन्दोलन के वापस ले लिए जाने के कारण सम्पूर्ण देश में निराशा छा गई और इसी निराशा ने क्रान्तिकारी आतंकवादी आन्दोलन में फिर से जान फूंक दी। 1924 में दीर्घ अन्तराल के बाद लखनऊ में क्रान्तिकारियों की एक बैठक हुई, जिसमें 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' की स्थापना की गई। रामप्रसाद बिस्मिल ने इस बैठक की अध्यक्षता की। इस एसोसिएशन ने फिर से भारत में उग्रवादियों को प्रशिक्षित करना शुरू किया और अंग्रेजी शासन को परेशान करने की योजना बनाई। 9 अगस्त, 1925 को 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के क्रान्तिकारियों ने लखनऊ के निकट काकोरी में सरकारी खजाने को लूट लिया, जो **'काकोरी षड्यंत्र'** के नाम से जाना जाता है। यह इस एसोसिएशन की पहली कार्यवाही थी। इस षड्यंत्र में रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खां, रोशन सिंह और राजेन्द्र लाहिड़ी को अभियुक्त बनाया गया और फांसी दे दी गई।

भगत सिंह, छबीलदास, यशपाल आदि ने मिलकर 1928 में नौजवान सभा की स्थापना की। नौजवान सभा ने क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रयास किए। सरदुल सिंह, आनन्द किशोर, केदारनाथ सहगल और कांतिस्वर मेहता नौजवान सभा के प्रमुख कार्यकर्ता थे। नौजवान सभा ने रूस के साथ समझौता किया तथा काकोरी दिवस मनाया। नौजवान सभा के क्रान्तिकारियों में धीरे-धीरे समाजवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ा। सितम्बर, 1928 में भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, भगवती चरण वोहरा आदि ने मिलकर दिल्ली के फिरोजशाह कोटला ग्राउण्ड में 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' की स्थापना की। इस सभा में क्रांतिकारी गतिविधियों को जारी रखते हुए भारत में समाजवाद की स्थापना का लक्ष्य रख गया। साइमन कमीशन 1928 में भारत आया, तो क्रान्तिकारियों ने उसके विरोध में एक बड़ा जुलूस निकाला। जुलूस पर अंग्रेज अफसर सैण्डहर्स्ट की आज्ञा से लाठी चार्ज किया गया, जिससे लाला लाजपतराय की मृत्यु हो गई। लाला लाजपतराय की मृत्यु को क्रान्तिकारी बर्दाश्त नहीं कर पाए और उसका बदला लेने के लिए भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव ने सैण्डहर्स्ट की गोली मारकर हत्या कर दी। 1928 में केन्द्रीय विधान सभा में 'लोक सुरक्षा विधेयक' और 'व्यापारी विवाद अधिनियम' पर चल रहे बहस के दौरान भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने विधान सभा के केन्द्रीय हॉल में बम फेंक दिया। बम उपरिलिखित दोनों विधेयकों के खिलाफ विरोध जताने के लिए फेंका गया था। इस घटना के तत्काल बाद भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त को गिरफ्तार कर लिया गया और बाद में उन्हें फांसी की सजा सुनाई गई। भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु और बटुकेश्वर दत्त को जेल में रखा गया। जेल में भी इन लोगों ने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द रखी। चन्द्रशेखर आजाद ने जेल से बाहर क्रान्तिकारी गतिविधियों को जारी रखा। अपनी मांगों के समर्थन में क्रान्तिकारियों ने जेल के अन्दर भूख हड़ताल कर दी। भूख हड़ताल बहुत लम्बा खिंचा, पर अंग्रेजी हुकूमत ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। 63 दिन की लम्बी अवधि के बाद 25 वर्षीय जतिनदास की मृत्यु हो गई।

भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को अक्टूबर, 1930 को स्पेशल ट्रिब्यूनल ने मौत की सजा सुनाई। नौजवान सभा की कई अपीलों के बावजूद इन क्रान्तिकारियों को रिहा नहीं किया गया और 23 मार्च, 1931 को इन तीनों क्रान्तिकारियों को फांसी दे दी गई। भगतसिंह को फांसी लगने के बाद भी चन्द्रशेखर आजाद ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को जारी रखा। परन्तु, 1933 में पुलिस को उनकी जानकारी मिल गयी और उसने उनका पीछा शुरू कर दिया। इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस मुठभेड़ में चन्द्रशेखर आजाद ने अपनी ही गोली से वीरगति प्राप्त की। उनकी मृत्यु के बाद क्रान्तिकारी आन्दोलन बिखर गया। 1935 के 'भारत शासन अधिनियम' के प्रावधानों के कारण क्रान्तिकारियों का स्वतंत्रता संग्राम में कोई खास योगदान नहीं रहा। 1942 के बाद ही वे फिर से महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर पाए।

चटगांव (बंगाल) में एक महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी घटना हुई, जो चटगांव केस के नाम से प्रसिद्ध है। चटगांव में विख्यात क्रान्तिकारी मास्टर सूर्यसेन के नेतृत्व में युवकों और युवतियों ने विद्रोह करने का प्रयास किया। सूर्यसेन ने एक ही साथ चटगांव, बाड़ीसाल और मैमन सिंह के सैनिक शस्त्रागारों पर एक ही समय हमला करने की योजना बनाई। चटगांव षड्यंत्र केस भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के इतिहास में अपना अलग महत्त्व रखता है, क्योंकि इस षड्यंत्र में पहली बार दो महिला क्रान्तिकारियों—कल्पना दत्त और शीतिलता वाडेकर ने सक्रिय भूमिका निभाई। अपनी अलग पहचान के कारण 'चटगांव आर्मरी रेड केस' भारतीय क्रांतिकारी आतंकवादी आन्दोलन के इतिहास में अतुलनीय है।

साइमन कमीशन

वर्ष 1919 के एक्ट को पारित करते समय ब्रिटिश सरकार ने यह घोषणा कि वह दस वर्ष पश्चात् पुनः इन सुधारों की समीक्षा करेगी। किन्तु 27 में ही उसने आयोग की नियुक्ति की घोषणा कर दी, जिसका य विधिक आयोग था। सर जॉन साइमन इसके अध्यक्ष तथा सभी सातों सदस्य श्वेत थे। कालांतर में सर जॉन साइमन के नाम से ही जाना जाने लगा। इस आयोग को यह रिपोर्ट देनी थी कि भारत में उत्तरदायी सरकार की व्यवस्था, शिक्षा के प्रसार तथा प्रतिनिधि संस्थाओं के लालिमी है तथा भारत इसके लिये कहां तक तैयार है। सुधारों के संबंध में ब्रिटिश सरकार द्वारा अगला कदम था, किन्तु ब्रिटेन की तत्कालीन सत्तारूढ़ पार्टी कंजरवेटिव पार्टी से भयभीत थी तथा ब्रिटेन के सर्वाधिक बहुमूल्य उपनिवेश के प्रश्न को संभवतः सत्तारूढ़ होने वाली लेबर पार्टी के लिये चाहती थी। कंजरवेटिव या रूढ़िवादी दल के तत्कालीन नेता लार्ड बिरकनहेड का मानना था कि भारत के लोग, संवैधानिक एक सुनिश्चित योजना बनाने में सक्षम हैं। फलतः इसीलिये कमीशन की नियुक्ति की।

साइमन कमीशन ने जो संस्तुतियां प्रस्तुत दीं, (उन्हें 1930 में किया गया।) उनमें सुझाव दिया गया था कि—(1) प्रांतीय तथा व्यवस्था सहित सभी क्षेत्रों में उत्तरदायी सरकार-गठित की केंद्रीय विधान मण्डल का पुनर्गठन किया जाये। इसमें संघीय इसके सदस्य प्रांतीय विधान मण्डलों द्वारा अप्रत्यक्ष तरीके से चुने केंद्र में उत्तरदायी सरकार का गठन न किया जाये क्योंकि इसके उचित समय नहीं आया है।

भारत में साइमन कमीशन के विरुद्ध त्वरित तथा तीव्र जनाक्रोश हो गया। भारतीय जनारोष का प्रमुख कारण किसी भी भारतीय को का सदस्य न बनाया जाना तथा भारत में स्वशासन के संबंध में विदेशियों द्वारा किया जाना था। चूंकि भारतवासी यह समझते थे कि का संविधान भारतीयों को ही बनाना चाहिए, अतः कमीशन में भारतीय सदस्य को न लिये जाने से उन्होंने यह अनुमान लगाया कि भारतीयों को स्वशासन के योग्य नहीं समझते हैं।

कांग्रेस की प्रतिक्रिया

कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन (दिसम्बर 1927) में एम.ए. अंसारी अध्यक्षता में कांग्रेस ने 'प्रत्येक स्तर एवं प्रत्येक स्वरूप' में साइमन कमीशन के बहिष्कार का निर्णय किया। इस बीच नेहरू के प्रयासों से अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पारित हो गया। किसान-मजदूर पार्टी, लिबरल फेडरेशन, हिन्दू महासभा तथा मुस्लिम लीग ने कांग्रेस के साथ मिलकर कमीशन के बहिष्कार की नीति अपनायी। जबकि पंजाब में संघवादी (unionists) तथा दक्षिण भारत में जस्टिस पार्टी ने कमीशन का बहिष्कार न करने का निर्णय किया।

जन प्रतिक्रिया

3 फरवरी 1928 को साइमन कमीशन बंबई पहुंचा। इसके बंबई पहुंचते ही देश के सभी प्रमुख नगरों में हड़तालों एवं जुलूसों का आयोजन किया गया। जहां कहीं भी कमीशन गया, उसका स्वागत काले झंडों तथा 'साइमन गो बैक' के नारों से किया गया। केंद्रीय विधानसभा ने भी साइमन का स्वागत करने से इंकार कर दिया।

साइमन कमीशन के विरुद्ध जनारोष का सबसे प्रमुख तथ्य यह है कि इसमें बड़ी संख्या में युवाओं ने भाग लिया तथा पहली बार राजनीति में भागेदारी का अनुभव प्राप्त किया। युवाओं ने कमीशन के विरुद्ध किये रहे विरोध प्रदर्शनों में सक्रिय भूमिका निभायी तथा उसे क्रांतिकारी रूप प्रदान किया। युवाओं की समितियां एवं सभायें विभिन्न स्थानों पर हुईं। इसी चरण में जवाहर लाल नेहरू एवं सुभाषचंद्र बोस राष्ट्रवादियों के रूप में उभरे। इन दोनों युवा राष्ट्रवादियों ने विभिन्न के दौरे किये तथा विभिन्न स्थानों पर सभाओं को संबोधित किया में विरोध प्रदर्शन की चेतना उभरने से मौलिक समाजवादी विचा

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

को उर्वर भूमि प्राप्त हुई जिसका प्रभाव पंजाब नौजवान सभा, किसान दल तथा हिन्दुस्तानी सेवा समिति (कर्नाटक) जैसे में परिलक्षित हुआ।

दमन

ने साइमन कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शनकारियों पर दमन का तथा कई स्थानों पर उसने लाठियां बरसायीं। यहां तक कि नेताओं को भी नहीं बख्शा। जवाहरलाल नेहरू तथा जी.बी. में बुरी तरह पीटा गया। लाहौर में प्रदर्शनकारियों का नेतृत्व पर तो लाठियों के संघातिक प्रहार किये गये राय की तरह जख्मी हो गये तथा 17 नवंबर 1928 को उनकी मृत्यु हो

कमीशन की नियुक्ति का प्रभाव

कमीशन की नियुक्ति के प्रभाव को मुख्य राजनीति में साइमन कमीशन के प्रभाव को देखा जा सकता है-

(i) इसने मौलिक राष्ट्रवादी ताकतों को, जो पूर्ण स्वराज्य के साथ आधार पर सामाजिक-आर्थिक सुधारों की मांग कर रहीं थीं, और कर दिया।

(ii) इसने लार्ड बिरकनहैड की इस चुनौती को कि भारतीय सर्वसम्मत का निर्माण करके दिखायें, मुंहतोड़ जवाब दिया। इससे, भारतीयों अवसर पर असाधारण एकता प्रदर्शित हुई।

नेहरू रिपोर्ट

कांग्रेस ने 'साइमन कमीशन' के विरोध में एक समानान्तर आयोग का पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में किया, जिसने 1928 में अपनी रिपोर्ट दे दी। नेहरू रिपोर्ट को लखनऊ में आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन में स्वीकार कर लिया गया और उसी रूप में उसे पारित कर दिया गया। केवल मुस्लिम लीग के नेता जिन्ना ने ही इसके प्रति असहमति व्यक्त की। इसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित थीं:

1. भारत को अन्य अंग्रेजी डोमिनियनों की भांति स्वाधीनता प्रदान की जाए।
2. केन्द्र में द्विसदनात्मक प्रणाली स्थापित की जाए तथा कार्यकारिणी पूर्ण रूप से व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी रहे।
3. भारत में संघीय प्रणाली स्थापित की जाए, विशिष्ट अधिकार केन्द्र के पास रहे।
4. समस्त निर्वाचन क्षेत्रीय निर्वाचन के आधार पर हो तथा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को समाप्त कर दिया जाए।
5. यह निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा और किसी बहुसंख्यक वर्ग के स्थान आरक्षित न हों।
6. अल्पसंख्यकों के लिए जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित हों। पंजाब और बंगाल को छोड़कर अन्य प्रान्तों में मुसलमानों के लिए उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त से हिन्दुओं के लिए स्थान आरक्षित हों।

के 14 सूत्र

म लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना ने नेहरू रिपोर्ट में के लिए पृथक् निर्वाचक-मण्डल के लिए प्रावधान न होने के र कर दिया था। जिन्ना ने इसके बाद अपनी मांगों की एक । इस सूची में उनके तथाकथित चौदह सूत्र थे।

रतीय संविधान स्वरूप में संघीय हो एवं अपशिष्ट शक्तियां न होनी चाहिए।

ों को समान स्वायत्तता प्राप्त हो।

भी विधानमण्डल एवं प्रत्येक प्रान्त में अन्य निर्वाचित कों को पर्याप्त एवं प्रभावी नियंत्रण दिया जाना चाहिए।

- केन्द्रीय विधानमण्डल में मुसलमानों को 1/3 प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए।
- साम्प्रदायिक समूहों का प्रतिनिधित्व पृथक् निर्वाचन पद्धति निर्वाचन पद्धति से होना चाहिए।
- भविष्य में किसी प्रादेशिक पुनर्विभाजन द्वारा पंजाब, बंगाल एवं पश्चिमी सीमा प्रान्त में मुस्लिम बहुमत पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।
- सभी सम्प्रदायों को धर्म, विश्वास, पूजा, उपासना एवं प्रचार समुदाय तथा शिक्षा की पूर्ण स्वतत्रता होनी चाहिए।
- किसी विधानमण्डल या निर्वाचित निकाय द्वारा कोई विधायक या उसका भाग जो किसी सम्प्रदाय से सम्बन्धित हो तभी पारित किया जाना चाहिए, जबकि उस सम्प्रदाय विशेष का 3/4 भाग उसे अपने हितों के विपरीत बताते हुए विरोध न करे।
- सिन्ध को बम्बई प्रेसीडेन्सी से पृथक् किया जाना चाहिए।
- अन्य प्रान्तों की भांति ही पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त एवं बलूचिस्तान में भी सुधार किए जाने चाहिए।
- संविधान में मुस्लिम संस्कृति, भाषा, धर्म, वैयक्तिक विधि एवं मुस्लिम धर्मार्थ संस्थाओं के संरक्षण की तथा अनुदान की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।
- समस्त शासकीय नौकरियों में योग्यतानुसार मुसलमानों को पर्याप्त भाग दिया जाना चाहिए।
- प्रत्येक विधानमण्डल-केन्द्रीय एवं प्रान्तीय में 1/3 मुस्लिम सदस्य होने चाहिए।
- केन्द्रीय विधानमण्डल द्वारा संविधान में भारतीय संघ के सभी राज्यों की स्वीकृति के बिना कोई संशोधन नहीं होना चाहिए।

पूर्ण स्वराज्य की मांग

दिसम्बर 1929 में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन तत्कालीन पंजाब प्रांत की राजधानी लाहौर में हुआ। इस ऐतिहासिक अधिवेशन में कांग्रेस के 'पूर्ण स्वराज्य' का घोषणा-पत्र तैयार किया तथा इसे कांग्रेस का मुख्य लक्ष्य घोषित किया। जवाहरलाल नेहरू, जिन्होंने पूर्ण स्वराज्य के विचार को लोकप्रिय बनाने में सर्वाधिक योगदान दिया था, इस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये। जवाहरलाल नेहरू को अध्यक्ष बनाने में गांधी जी ने निर्णायक भूमिका निभाई। यद्यपि अठारह प्रांतीय कांग्रेस समितियों में से सिर्फ तीन का समर्थन ही नेहरू को प्राप्त था किंतु बहिष्कार की लहर में युवाओं के सराहनीय प्रयास को देखते हुये महात्मा गांधी ने इन चुनौतीपूर्ण क्षणों में कांग्रेस का सभापतित्व जवाहरलाल नेहरू को सौंपा।

लाहौर अधिवेशन में पास किये गये प्रस्ताव की प्रमुख मांगें इस प्रकार थीं—

1. गोलमेज सम्मेलन का बहिष्कार किया जायेगा।
2. पूर्ण स्वराज्य को कांग्रेस ने अपना मुख्य लक्ष्य घोषित किया।
3. कांग्रेस कार्यसमिति को सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ करने का पूर्ण उत्तरदायित्व सौंपा गया, जिसमें करों का भुगतान नहीं करने जैसे कार्यक्रम सम्मिलित थे।
4. सभी कांग्रेस सदस्यों को भविष्य में कौंसिल के चुनावों में भाग न लेने तथा कौंसिल के मौजूदा सदस्यों को अपने पदों से त्यागपत्र देने का आदेश दिया गया।
5. 26 जनवरी 1930 का दिन पूरे राष्ट्र में 'प्रथम स्वतंत्रता दिवस' के रूप में मनाने का निश्चय किया गया।

31 दिसम्बर 1929: की अर्द्धरात्रि को इंकलाब जिंदाबाद के नारों के बीच रावी नदी के तट पर भारतीय स्वतंत्रता का प्रतीक तिरंगा झंडा फहराया गया।

26 जनवरी 1930: को पूरे राष्ट्र में जगह-जगह सभाओं का आयो

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

किया गया, जिसमें सभी लोगों ने सामूहिक रूप से स्वतन्त्रता प्राप्त करने की शपथ ली। इस कार्यक्रम को अभूतपूर्व सफलता मिली। गांवों तथा कस्बों में सभाएं आयोजित की गयीं जहां फहराया गया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन 1930-1934

1922 में चौरी चौरा घटना के बाद गांधीजी द्वारा अचानक असहयोग आंदोलन वापस ले लेने के निर्णय का अनेकों कांग्रेस नेताओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। असहयोग-खिलाफत आंदोलन के दिनों की असाधारण हिन्दू मुसलमान एकता 1920 के मध्य में हुए व्यापक साम्प्रदायिक दंगों में विलीन हो गयी। सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में कांग्रेस का वामपंथी दल इसी काल में उभर रहा था, जिसका नारा था डोमिनियन स्थिति ही नहीं हमें पूर्ण स्वराज चाहिए। बहुत पशोपेश के बाद गांधी जी ने कांग्रेस मत में इस परिवर्तन को स्वीकार कर लिया, जिसने दिसम्बर, 1929 में लाहौर के अधिवेशन में स्वीकार कर लिया, जिसने 1930-34 में देशव्यापी संघर्ष के अगले प्रमुख दौर के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। यह तय किया गया कि 26 जनवरी, 1930 को पूरे भारत में स्वतंत्रता की घोषणा की जाएगी। इस दिन लोगों को महात्मा गांधी द्वारा तैयार की गई पूर्ण स्वराज्य शपथ का वचन लेना था।

शुरुआत

12 मार्च 1930 को अपने 78 चुने हुए अनुयायियों के साथ गांधी जी ने साबरमती आश्रम से दांडी समुद्र तट तक की ऐतिहासिक यात्रा शुरू की। वहां गांधी जी और उनके अनुयायियों ने समुद्र से नमक बना कर नमक कानून तोड़ा। 24 दिनों की लम्बी यात्रा के उपरान्त उन्होंने 5 अप्रैल, 1930 को दांडी में सांकेतिक रूप से नमक कानून को भंग किया। नमक कानून को तोड़ने से औपचारिक रूप से सविनय अवज्ञा आन्दोलन का शुभारंभ हुआ।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कार्यक्रम:

1. नमक कानून तथा अन्य कानूनों का उल्लघंन।
2. भू-राजस्व, लगान या अन्य करों का भुगतान न करना।
3. कानूनी अदालतों, विधानमण्डलों, चुनावों, सरकारी समारोहों, सरकारी विद्यालयों और महाविद्यालयों का बहिष्कार।
4. विदेशी वस्तुओं और कपड़ों का बहिष्कार तथा विदेशी कपड़ों को जलाना।
5. शराब तथा अन्य मादक पदार्थों को बेचने वाली दुकानों पर शान्तिपूर्ण धरना देना।
6. व्यापक हड़तालों और प्रदर्शनों का संयोजन करना।
7. सरकारी नौकरियों से त्यागपत्र देना तथा नागरिक, सैनिक तथा पुलिस सेवाओं में शामिल न होना।

प्रगति

पुलिस और निम्न स्तर के प्रशासनिक अधिकारियों के सामाजिक बहिष्कार से अनेकों इस्तीफे दिये गये। रूढ़िवादी और कुलीन परिवार की नारों महिलाएं अपने घरों की चारदीवारी लांघ कर बाहर निकल आई और नय अवज्ञा आन्दोलन के लिए गिरफ्तार होने और जेल जाने के लिए को प्रस्तुत किया। उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में सामान्यतया सीमान्त के नाम से प्रसिद्ध खान अब्दुल गफ्फार खां ने अपने 'खुदाई गार' संगठन के ध्वज और अपने स्वयंसेवकों के साथ इस आन्दोलन सक्रिय रूप से भाग लिया। ये स्वयंसेवक लाल कुर्ती पहने होते शाक के कारण ही वे 'लाल कुर्ती' के रूप में प्रसिद्ध हुए। एक मय में ही इस आन्दोलन के चलते 60,000 से अधिक लोगों ई। उत्तर-पूर्व में मणिपुर की जनजातियों के लोग भी इस लित हुए तथा युवा नागा महिला रानी गैडिनलियु ने अपने ाथ इस आन्दोलन को पूरा समर्थन दिया।

दूसरी तरफ अंग्रेजों द्वारा क्रूरता से चलाया गया दमन चक्र का प्रतीक था कि अंग्रेज खतरे की गंभीरता को अच्छी तरह समझ गये। दूसरा दमन में पुलिस और स्थानीय अफसरों द्वारा किए गए अत्याचारों के अनेकों मामलों की याद को जगा दिया, जिनके कारण संघर्ष गांव वालों के दिन प्रतिदिन के जीवन अनुभवों से जुड़ गया। सहानुभूति शीघ्र ही सहभागिता में बदल गयी, जिसने आंदोलन को कांग्रेस संगठन और प्रचार के सीधे प्रभाव की संकीर्ण सीमा से बाहर फैला दिया।

शीघ्र ही इस आन्दोलन ने अखिल भारतीय स्वरूप ले लिया। मालाबार में राजगोपालाचारी के नेतृत्व में नमक-सत्याग्रह हुआ। मालाबार तट नोयाखाली समुद्र-तट पर और आन्ध्र प्रदेश में भी बड़े पैमाने पर नमक के सत्याग्रह- आन्दोलन हुए। मई में गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद आन्दोलन और तीव्र हो गया। इस आन्दोलन में महिलाओं और छात्रों ने बड़े पैमाने पर भाग लिया।

जहां नमक बनाने का आन्दोलन नहीं चल सकता था, वहां अन्य मुद्दों से ही 'अवज्ञा' की गई। गुजरात में बारदोली और मड़ौच में कर न देने का आन्दोलन चला। बिहार में चौकीदारी-कर के विरुद्ध आन्दोलन हुए। महाराष्ट्र, कर्नाटक ओर मध्य भारत में वन-कानूनों के खिलाफ आन्दोलन चलाया गया। उत्तर प्रदेश में भी कर और लगान न देने के आन्दोलन हुए गए। असम में छात्रों ने आपत्तिजनक 'कनिंघम सरकुलर' के विरुद्ध आन्दोलन चलाया।

गांधी-इर्विन समझौता 5 मार्च, 1931

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी थी और उसकी सिफारिशों पर विचार करने के लिए नवम्बर, 1930 में लन्दन में प्रथम गोलमेज सम्मेलन बुलाया गया। कांग्रेस ने सम्मेलन का बहिष्कार किया लेकिन अन्य पार्टियों-यथा, उदारवादी, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा तथा रियासतों ने इसमें भाग लिया। यह सम्मेलन असफल रहा, वाइसराय और कांग्रेसी नेताओं के बीच बातचीत के लिए यथोचित माहौल तैयार करने के लिए अन्य कांग्रेसी नेताओं को रिहा कर दिया गया तथा वाइसराय लार्ड इर्विन ने कांग्रेस को बातचीत के लिए आमंत्रित किया। कांग्रेस ने वाइसराय के साथ समझौता वार्ता करने के लिए गांधीजी को अधिकृत किया। गांधी और इर्विन के बीच लम्बी बातचीत के उपरान्त 5 मार्च, 1931 को दोनों के बीच एक समझौते के रूप में जाना जाता है। इस समझौते की प्रमुख विशेषताएं ये थीं।

(i) पहली गोल मेज़ कान्फ्रेंस में हुए करार पर दूसरी गोल मेज़ कान्फ्रेंस में आगे विचार-विमर्श किया जायेगा।

(ii) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ढंग से सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस ले लेगी।

(iii) विदेशी माल का बहिष्कार भी तुरंत वापस ले लिया जायेगा।

(iv) सरकार सविनय अवज्ञा आंदोलन के संबंध में लागू अध्यादेशों को वापस लेने के लिए राजी हो गयी। ये भी तय हुआ कि जिन राजनीतिक-कैदियों के विरुद्ध हिंसा का कोई आरोप नहीं था, उन्हें रिहा किया जायेगा और जो जुर्माने वसूल नहीं किये गये हैं, उन्हें माफ कर दिया जायेगा। आंदोलन के कारण जिन्हें नुकसान पहुंचा था, उनकी क्षतिपूर्ति की जायेगी।

(v) सरकार नमक कानून से संबंधित मौजूदा कानून के उल्लंघन को न तो माफ करेगी और न ही कानून में संशोधन करेगी। तथापि, सरकार ने समुद्र तट के निर्दिष्ट क्षेत्रों के भीतर रहने वाले लोगों को नमक इकट्ठा करने और बनाने की अनुमति दी।

26 से 29 मार्च, 1931 तक कराची में हुए कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में इस समझौते की संपुष्टि की गई। कांग्रेस को प्रतिनिधित्व करने के लिए भी प्राधिकृत किया।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

प्रत्येक अल्पसंख्यक समुदाय के लिए विधानमंडलों में कुछ सीटें सुरक्षित की गईं थीं, जिनके लिए सदस्यों का चुनाव पृथक निर्वाचन मंडलों से होना था-यानी मुसलमान सिर्फ मुसलमान को और सिख सिर्फ सिख को ही वोट दे सकता था। मुसलमान, सिख और ईसाई पहले से ही अल्पसंख्यक माने जाते रहे थे। अब इस नए कानून के अन्तर्गत दलित वर्ग को भी अल्पसंख्य करार दिया गया और उन्हें हिंदू समाज से अलग कर दिया गया।

गांधीजी का आमरण अनशन तथा समझौता: महात्मा गांधी उस समय यरवदा जेल में थे। यह सूचना मिलते ही उन्होंने इसका कड़ा विरोध किया। गांधी ने मांग की कि दलित वर्ग के प्रतिनिधियों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर आम निर्वाचक मंडल के माध्यम से होना चाहिए। साथ ही गांधीजी ने दलित वर्ग के लिए काफी संख्या में सीटें सुरक्षित करने की मांग का विरोध नहीं किया। अपनी मांग मनवाने के लिए वह 20 सितंबर 1932 से आमरण अनशन पर बैठ गए।

20 सितम्बर, 1932 का दिन 'उपवास और प्रार्थना दिवस' के रूप में मनाया गया। पूरे देश में कुएं, मंदिर आदि दलितों के लिए खोल दिए गए थे। पंडित मदन मोहन मालवीय ने दलित वर्ग लीग के नेता डॉ. बी. आर. अम्बेडकर सहित विभिन्न जातियों एवं राजनीतिक दलों का एक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन में अन्ततः गांधीजी के उपवास के छठे दिन 25 सितम्बर, 1932 को पूना में एक समझौता हुआ, जिसमें दो शर्तों के आधार पर सामान्य निर्वाचन मण्डल बनाए जाने के संबंध में सहमति हुई। ये दो शर्तें थीं, प्रथमतः विभिन्न प्रान्तीय विधानमण्डलों में दलित वर्गों के लिए 148 सीटें आरक्षित की गईं, जबकि साम्प्रदायिक अधिनिर्णय में केवल 71 सीटों की ही व्यवस्था की गई थी। दूसरे केन्द्रीय विधानमण्डल में 18 प्रतिशत सीटें दलित वर्गों के लिए आरक्षित की गईं।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन 17 नवम्बर से 24 दिसम्बर, 1932

भारतीय राजनीतिक परिदृश्य की गतिविधियों से अबाधित ब्रिटिश सरकार ने अपना संवैधानिक सुधारों का कार्य जारी रखा। 17 नवम्बर, 1932 को तृतीय गोलमेज सम्मेलन बुलाया गया और यह 24 दिसम्बर तक चला। कांग्रेस ने इसका बहिष्कार किया था और केवल 46 प्रतिनिधियों ने ही इस सम्मेलन में भाग लिया।

1935 का भारत शासन अधिनियम

'भारत परिषद् अधिनियम', 1861 से भारत में सांविधानिक विकास की जो प्रक्रिया आरम्भ हुई थी, उसका अंतिम चरण था 1935 का 'भारत शासन अधिनियम'। इस अधिनियम का महत्व कई दृष्टियों से था। एक, तो इसने कांग्रेस को पहली बार प्रशासकीय अनुभव दिए। दूसरे, भारतीय संविधान के निर्माण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही और संविधान लागू होने तक इस अधिनियम के प्रावधानों से ही भारत का शासन चलता रहा (1950 तक)। अपर्याप्त ही सही, पर यह अधिनियम एक उत्तरदायी सरकार के लिए प्रबंध कर चुका था।

इस अधिनियम की पृष्ठिभूमि थी कि 1919 के 'शासन अधिनियम' में सुधारों के लिए 1927 में 'साइमन कमीशन' गठित किया गया था, जिसका भारतीयों ने विरोध किया और कांग्रेस ने 'सविनय-अवज्ञा आंदोलन' छे दिया। फिर, इंग्लैंड में 'लेबर पार्टी' के सत्ता में आने पर भारतीय शास में सुधारों के लिए सभी पक्षों से परामर्श के लिए 'गोलमेज सम्मेलन' का प्रस्त हुआ। परंतु, सरकार द्वारा 'साइमन कमीशन' की रिपोर्ट स्वीकार कर जाने और राष्ट्रवादियों द्वारा तैयार 'नेहरू रिपोर्ट' को अस्वीकार कर जाने से कांग्रेस ने उसमें हिस्सा नहीं लिया। दरअसल, कांग्रेस 'डोमिनियन स्टेटस' पर समझौते की बात तो दूर, उसे तत्काल लागू की मांग पर अड़ी हुई थी। फिर, 'गांधी-इरविन-समझौता' हुआ मार्च में और सितम्बर, 1931 में दूसरे 'गोलमेज सम्मेलन' में गांधी ने भाग पर उधर इंग्लैंण्ड में फिर सरकारी समीकरण बदल चुके थे और इसमें कुछ सकारात्मक होने के बजाए मैकडोनल्ड द्वारा अगस्त,

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

'कम्युनल एवार्ड' की घोषणा कर दी गई। इसमें मुसलमानों, सिखों, दलितों, स्त्रियों, एंग्लो-इंडियन ईसाई, यूरोपीय आदि विभिन्न वर्गों को पृथक् निर्वाचनमण्डल देने की व्यवस्था थी। फिर, 'सविनय अवज्ञा' छिड़ा, तीसरा गोलमेज सम्मेलन भी हुआ—कांग्रेस ने बहिष्कार किया। पर, संवैधानिक सुधारों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दिखाते हुए ब्रिटिश सरकार ने प्रस्तावित संविधान का मसविदा तैयार कर लिया और 1935 में एक लम्बा-चौड़ा (451 धाराएं, 15 अनुसूचियां) 'भारत शासन अधिनियम' ब्रिटिश संसद ने पारित और सम्राट ने अनुमोदित कर दिया।

मुख्य लक्षण

1935 के अधिनियम द्वारा जिस शासन-प्रणाली की व्यवस्था की गई थी उसके मुख्य लक्षण निम्नलिखित थे:

परिसंघ और प्रांतीय स्वायत्ता: इसके पहले के भारत शासन अधिनियम में भारत सरकार ऐकिक थी। किंतु, 1935 के अधिनियम में परिसंघ की स्थापना की गई जिसमें इकाइयां थीं प्रांत और देशी रियासतें। देशी रियासतों के लिए परिसंघ में सम्मिलित होने का विकल्प था। देशी रियासतों के शासकों ने अपनी सहमति नहीं दी थी इसलिए 1935 के अधिनियमों में जिस परिसंघ की व्यवस्था थी वह कभी नहीं बन सका। यद्यपि परिसंघ से सम्बंधित भाग को भारत के लिए निष्प्रभावी रहे फिर भी प्रांतीय स्वायत्ता से सम्बंधित भाग सरकार के 1937 में प्रभावी किया गया। प्रांत अपने परिवेश में केंद्रीय सरकार के प्रत्यायोजिती नहीं थे बल्कि प्रशासन की स्वतंत्र इकाइयों के रूप में थे। इस सीमा के भीतर भारत सरकार प्रांतीय सरकारों के परिप्रेक्ष्य में परिसंघ की भूमिका निभाने लगी, यद्यपि देशी रियासतों के न आने के कारण परिसंघ की स्कीम पूरी न हो सकी।

गवर्नर, सम्राट की ओर से प्रांत की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करता था। वह गवर्नर-जनरल के अधीन नहीं था। गवर्नर से यह अपेक्षा थी कि वह मंत्रियों की परामर्श से काम करेगा और मंत्री विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी थे। किंतु प्रांतीय स्वयत्तता के प्रारंभ किए जाने पर भी 1935 के अधिनियम में केंद्रीय सरकार का एक विशेष क्षेत्र में प्रांतों पर नियंत्रण बना रहा। कुछ विषयों में गवर्नर से 'स्वविवेकानुसार' कार्य करने की अपेक्षा थी। ऐसे विषयों में गवर्नर मंत्रिमंडल की सलाह के बिना कार्य करता था। ऐसे कार्य गवर्नर-जनरल के और उसके माध्यम से सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के नियंत्रण और निर्देश से होते थे।

प्रांतीय विधान मण्डलों का आकार तथा रचना भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न थीं। कुछ प्रांतों में द्विसदनीय व्यवस्था भी थी। ऊपर के सदन को *विधान परिषद्* कहते थे, उसमें कुछ सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत भी किए जाते थे। निम्न सदन *विधानसभा* कहता था। विधान सभाओं में स्थानों की संख्या इस प्रकार थी: असम में 108, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत में 50, उड़ीसा तथा सिंध प्रत्येक में 60, मध्य प्रांत में 112, बिहार में 152, पंजाब और बम्बई में 175 मद्रास में 215, संयुक्त प्रांत में 228 और बंगाल में 230।

इस अधिनियम की एक विशेषता यह थी कि सम्प्रदायिक तथा अन्य ों को पृथक् प्रतिनिधित्व दिया गया। अधिनियम के मतदाता मण्डल प्रदायिक निर्णय' तथा "पूना समझौते" के अनुसार नियत किए गए। इस साधारण मुस्लिम, यूरोपीय, एंग्लो-इण्डियन, भारतीय ईसाई, और भिन्न-भिन्न मतदाता बनाए गए।

द्वैध शासन: जिस द्वैध शासन को साइमन आयोग ने प्रांतों य बताया था। वह केंद्रीय कार्यकारिणी के लिए निश्चित किया विषयों में से रक्षा, विदेशी मामले, धार्मिक मामले तथा जन-जाति नरल के हाथ में सुरक्षित रखे गए, जिनका प्रशासन वह न कार्यकारी परिषदों की सहायता से चलाएगा जो वह स्वयं और जो केवल उसी के प्रति उत्तरदायी होंगे। शेष संघीय 10 मंत्रियों की सहायता से चलाए जाएंगे और ये मंत्री न के प्रति उत्तरदायी होंगे।

वस्तुत: 1935 के अधिनियम के अधीन न तो गवर्नर-जनरल गए और न ही विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी मंत्रिपरिषद् को सलाह देने के लिए 1919 के अधिनियम द्वारा उपबंधित पूर्व परिषद् ही भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 तक गवर्नर-जनरल को देती रही।

संघीय विधान मंडल: केंद्रीय विधान मंडल में दो सदन थे, सभा और राज्य परिषद् से मिलकर बनते थे। संघीय सभा, जिसकी 5 वर्ष थी, में प्रांतों के 250 सदस्य और रियासतों के अधिकाधिक 125 होने थे। अंग्रेजी प्रांतों के सदस्य, प्रांतीय विधान परिषदों द्वारा और रियासतों के सदस्य, राजाओं द्वारा मनोनीत किए जाते थे। राज्य एक स्थाई सभा थी और उसके 1/3 सदस्य प्रत्येक 3 वर्ष के पश्चात् जाने थे। इसमें 260 सदस्य होने थे जिनमें से 156 प्रांतों के चुने हुए और अधिकाधिक 104 रियासतों के प्रतिनिधि होने थे, जिन्हें शासक को मनोनीत करना था। विधान मंडल की निम्नलिखित परिसीमाएं थीं:

(i) संघीय विधान मंडल द्वारा पारित विधेयक को गवर्नर-जनरल वीटो कर ही सकता था। सम्राट को भी उस पर वीटो का अधिकार था।

(ii) गवर्नर-जनरल की पूर्व मंजूरी के बिना कुछ विषयों की बाबत विधेयक या संशोधन विधान मंडल में पुनर्स्थापित नहीं किया जा सकता था।

(iii) यदि गवर्नर-जनरल का यह समाधान हो जाता था कि विधेयक का प्रभाव उसके विशेष उत्तरदायित्व के निर्वहन पर पड़ेगा तो विधान मंडल में उस विधेयक के बारे में विचार-विमर्श को रोक सकता था और उससे सम्बंधित कार्यवाहियों को निलंबित कर सकता था।

(iv) गवर्नर-जनरल को विधान मंडल के सत्रावसान की/अवधि के दौरान अध्यादेश जारी करने की शक्ति होती थी। उसे विधान मंडल समवर्ती विधान बनाने की स्वतंत्र शक्ति भी थी।

केंद्र और प्रांतों के बीच विधायी शक्तियों का वितरण: यद्यपि रियासतें परिसंघ में सम्मिलित नहीं हुई; फिर भी भारत शासन अधिनियम 1935 के परिसंघीय उपबंध केंद्रीय सरकार और प्रांतों के बीच वस्तुत: किए गए। उल्लेखनीय है कि 1935 के संविधान अधिनियम में विधायी शक्तियों को केंद्र और प्रांतीय विधान मंडलों के बीच विभाजित किया गया। इस अधिनियम में तीन प्रकार का विभाजन किया गया:

(i) एक परिसंघ सूची थी, जिस पर परिसंघ विधान मंडल को विधान बनाने की अनन्य शक्ति थी। इस सूची में विदेशी मामले, करेंसी और टंकण, नौसेना, सेना और वायुसेना, जनगणना जैसे विषय थे।

(ii) विषयों की एक प्रांतीय सूची थी, जिस पर प्रांतीय विधान मंडल की अनन्य अधिकारिता थी। उदाहरण के लिए पुलिस, प्रांतीय लोक सेवा और शिक्षा इत्यादि।

(iii) विषयों की एक समवर्ती सूची थी, जिस पर परिसंघ और प्रांतीय विधान मंडल दोनों विधान बनाने के लिए सक्षम थे। उदाहरणार्थ, दंड विधि और प्रक्रिया, सिविल प्रक्रिया, विवाह और विवाह-विच्छेद इत्यादि।

गवर्नर-जनरल द्वारा आपात की उद्घोषणा किए जाने पर परिसंघ विधान मण्डल को प्रांतीय सूची में प्रगणित विषयों की बाबत विधान बनाने की शक्ति थी।

भारत राज्य सचिव की परिषद् समाप्त कर दी गई और उसे मंत्रणा देने के लिए कुछ परामर्शदाता दे दिए गए, परंतु वह उनका परामर्श केवल सेवाओं के विषय को छोड़ कर शेष में मानने को बाध्य नहीं था। इस परिषद् के समाप्त करने का एक कारण यह था कि भारत का लोकमत इस परिषद् का कड़ा विरोध करता था।

यह नया संविधान अनम्य था। इसमें संशोधन करने का अधिकार ब्रिटिश संसद को ही था। भारतीय विधानमंडल केवल प्रस्ताव द्वारा संशोधन का विचार प्रकट कर सकता था। संसद उसे परिषदीय आज्ञा संशोधित भी कर सकती थी।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

प्रान्तीय चुनाव तथा प्रान्तों में लोकप्रिय सरकारों का गठन 1937

असहयोग अवज्ञा आंदोलन के दूसरे चरण ने लोगों को उस तरह प्रभावित नहीं किया, जैसा कि पिछले चरण ने किया था। यह स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था कि इस बार का जन आंदोलन अधिक दूर तक नहीं खिंचेगा। आंदोलन की इस शिथिलता से कांग्रेस के भीतर से संवैधानिक तरीकों को अपनाने की आवाजें उठने लगीं। इस दौरान 1933 में सत्यमूर्ति ने कांग्रेस लोकतंत्र पार्टी का गठन किया। के.एम. मुंशी, बी.सी. राय और रामा आयंगार ने भी स्वराज पार्टी की पुनर्स्थापना के लिए गांधी जी से आग्रह करने की कोशिश की। कुछ कांग्रेसी परिषद प्रवेश के पक्ष में थे। आचार्य नरेन्द्रदेव और पुरुषोत्तम दास टंडन जैसे अन्य लोग इसके विरुद्ध थे।

प्रान्तों के स्वशासन के विषय में मुस्लिम लीग ने अपना सहयोग प्रदान करने से मना कर दिया। कांग्रेस तो 1935 के संपूर्ण अधिनियम से अत्यंत ही असंतुष्ट थी, जिसका मुख्य असंतोष केंद्र में भारतीय राज्यों के प्रतिनिधित्व के विषय में था। 1936 में फैजपुर के अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया कि प्रांतीय विधान सभा के चुनाव 1937 में लड़े जाएं। पद ग्रहण किया जाए अथवा नहीं, इस विषय पर कांग्रेस में एकमत स्थापित न हो सका। फैजपुर अधिवेशन में सबसे महत्वपूर्ण कदम कांग्रेस ने उठाया, वह था एक कृषि कार्यक्रम को स्वीकृति देना। इस कार्यक्रम की प्रमुख विशेषताओं में निम्न बातें शामिल थीं:

- कृषि आय पर कर लगाना।
- लगान और माल गुजारी में 50 प्रतिशत की कमी
- बकाया लगान को समाप्त करना
- बेदखली कानूनों को आधुनिक बनाना
- सहकारी खेती

एक जबरदस्त चुनाव अभियान चलाकर कांग्रेस ने चुनाव में विजय प्राप्त करने की भरपूर कोशिश की।

चुनाव परिणाम

विभिन्न प्रांतों में विभिन्न तिथियों में चुनाव हुए थे। कांग्रेस ने प्रांतीय विधान सभा के चुनावों में महत्त्वपूर्ण सफलताएं प्राप्त कीं। विधान सभा के कुल 1,585 स्थानों में कांग्रेस ने 1,161 स्थानों पर अपने प्रत्याशी खड़े किए थे तथा 721 स्थानों पर विजय प्राप्त की थी। इन स्थानों में से 657 स्थान सामान्य चुनावक्षेत्र के अधीन थे। गवर्नर के अधीन 11 राज्यों में से 6 प्रांतों में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत मिला तथा 3 अन्य में वह सबसे बड़े दल के रूप में स्थापित हुई थी। इसके विपरीत मुस्लिम लीग को 482 स्थानों में से केवल 108 स्थान प्राप्त हुए थे। मुसलमानों के बहुमत वाले 4 प्रांतों में से एक भी क्षेत्र में वह बहुमत प्राप्त न कर सकी। जहां तक सुरक्षित सीटों का सवाल है, इन कांग्रेस की स्थिति के कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत कर रहे हैं:

– 482 सीटें, मुस्लिम सीटों के रूप में आरक्षित थीं। कांग्रेस ने 58 अपने उम्मीदवार खड़े किये और 26 पर वे जीते। इनमें से 19 उत्तर सीमांत प्रांत की थीं। बम्बई, यू.पी.सी.पी., सिंध और बंगाल में कांग्रेस मुस्लिम सीट प्राप्त नहीं कर सकी।

मजदूरों के लिए सुरक्षित 38 सीटों में से कांग्रेस ने 20 पर चुनाव लड़ा पर विजय प्राप्त की।

राज्य और उद्योग के लिए 56 सीटें आरक्षित थीं। कांग्रेस नें लड़ा और केवल 3 सीटें जीतीं।

महिलाओं के लिए 37 सीटें आरक्षित थीं। कांग्रेस ने 8 पर चुनाव लड़ा और विजय प्राप्त की।

इन सीटों का विस्तृत विवरण दे पाना तो मुश्किल है, पर इन

परिणामों को हम आंकड़े के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। सबसे पहले हम उस आंकड़े को प्रस्तुत कर रहे हैं, जो इन चुनावों में कांग्रेस की स्थिति को प्रदर्शित करता है:

1937 के चुनाव परिणाम

प्रांत	सीटों की कुल संख्या	कांग्रेस को प्राप्त सीटें
उत्तर प्रदेश	228	134
बिहार	152	95
मद्रास	215	159
सी.पी.	112	70
उड़ीसा	60	36
बम्बई	175	87
बंगाल	250	60
सिन्ध	60	08
असम	108	35
उ.प. सीमांत प्रांत	50	19
पंजाब	175	18
कुल	1585	721

इन चुनावों में कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी के रूप में स्थापित हुई। इसके साथ ही, कुछ अन्य पार्टियों ने भी प्रांतविशेष में अच्छी सफलता प्राप्त की। पंजाब में कांग्रेस से बहुत ही अच्छा प्रदर्शन यूनियनिस्ट पार्टी ने किया। यूनियनिस्ट पार्टी के प्रदर्शन को हम नीचे के आंकड़े से समझ सकते हैं:

पंजाब के चुनाव परिणाम (कुल सीटें 175)

पार्टियां	प्राप्त सीटें
यूनियनिस्ट पार्टी	98
कांग्रेस	18
खालसा नेशनलिस्ट पार्टी	13
हिन्दू महासभा	12
अकाली	11
मुस्लिम लीग	2
अन्य	21

बम्बई प्रांत में कांग्रेस ने अपेक्षाकृत अधिक सफलता प्राप्त की। वहां अन्य दलों का प्रदर्शन सामान्य रहा। उसकी प्रबलतम प्रतिद्वन्द्वी मुस्लिम लीग काफी असफल रही थी। इस प्रांत में विभिन्न पार्टियों की जो स्थिति रही थी, उसे नीचे के आंकड़े से समझा जा सकता है:

बम्बई के चुनाव परिणाम (कुल सीटें 175)

पार्टियां	प्राप्त सीटें
कांग्रेस	87
इण्डिपेंडेंट लेबर पार्टी	13
मुस्लिम लीग	10
गैर ब्राह्मण पार्टी	8
निर्दलीय	17
मुस्लिम निर्दलीय	12
यूरोपीय	6
पीजेंट पार्टी	2
अन्य	20

विधान सभा चुनावों के साथ-ही-साथ विधान परिषदों के लि हुए थे। पांच प्रान्तों—मद्रास, बम्बई, बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल परिषदों के लिए चुनाव हुए थे और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सफलता प्राप्त की थी। विधान परिषद के लिए हुए चुनावों के परिणाम नीचे दिए जा रहे हैं

प्रांत	विधान परिषद चुनाव परिणाम	
	कुल सीटें	कांग्रेस को प्राप्त सीटें
बंगाल	57	9
उत्तर प्रदेश	52	8
मद्रास	46	26
बम्बई	26	13
बिहार	26	8

पद स्वीकरण

पद स्वीकार करने का निर्णय कांग्रेस के आंतरिक मतभेदों के कारण लम्बित छोड दिया गया था। इस मामले पर विचार करने के लिए मार्च, 1932 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। राजेन्द्र प्रसाद ने पद के 'सशर्त स्वीकरण' का एक प्रस्ताव रखा, जिसे स्वीकार कर लिया गया। लेकिन, इस प्रस्ताव में एक शर्त जोड़ी गई कि मंत्रिमंडलों के कामकाज में हस्तक्षेप करने के लिए गवर्नर अपने विशेषाधिकारों का इस्तेमाल नहीं करेंगे। जून 1937 में गवर्नर-जनरल लॉर्ड लिनलिथ ने इस विषय में सार्वजनिक घोषणा की, जिसे संतोषजनक मानकर कांग्रेस ने 1937 में 6 प्रांतों (बिहार, उडीसा, संयुक्त प्रांत, मध्य प्रांत, बंबई तथा मद्रास) में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बनाए। वर्ष के अंत तक उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत में तथा 1938 में आसाम में मंत्रिमंडल बनाए गए।

प्रांत	कांग्रेसी प्रधानमंत्री
बम्बई	बी.जी. खैर
यू.पी.	गोविंद वल्लभ पंत
मद्रास	सी. राजगोपालाचारी
उड़ीसा	हरेकृष्ण महताब
सी.पी.	डा. खरे
बिहार	श्री कृष्ण सिंह
उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत	डा. खान साहब

कांग्रेस मंत्रिमण्डलों का कार्यकाल, 1937-39

1937 से 1939 के दौरान जब तक प्रांतों में कांग्रेस सत्तारूढ़ रही, मंत्रियों ने प्रांतों की संपूर्ण उन्नति तथा जनता के लाभ के लिए सराहनीय प्रयत्न किए। किसानों को ऋण से मुक्त कराने, दुर्भिक्ष की स्थिति से बचाने तथा क्रय-विक्रय की अच्छी सुविधाएं देने के लिए प्रयत्न किए। ये कानून अत्यंत शीघ्रता से पास किए गए। मद्य-निषेध, प्राथमिक शिक्षा, ग्राम विकास आदि समस्यायों की ओर ध्यान दिया। कृषि- विकास-योजनाएं बनाईं और प्रौढ़ साक्षरता-अभियान आरंभ किया। ब्रिटिश सरकार के प्रवक्ताओं ने भी कांग्रेस मंत्रिमंडलों के कार्यों की सार्वजनिक सफलता की प्रशंसा की है। लेकिन कांग्रेस के सामने कुछ समस्याएं भी थीं। जैसे सांप्रदायिक पार्टियों द्वारा कांग्रेस के विरुद्ध दुष्प्रचार किया गया। उन्होंने कांग्रेस पर अल्पसंख्यकों के प्रति भेदभाव बरतने का आरोप लगाया। साथ ही, इस समय पद का लाभ उठाने की ग़रज़ से बहुत से अवसरवादी कांग्रेस में शामिल हो गए। कई क्षेत्रों में कांग्रेस को ऐसे तत्वों से मुक्त कराने का अभियान भी चलाया गया। इस समय कांग्रेस के दो अधिवेशन हुए। 51 वां अधिवेशन हरिपुरा में फरवरी 1938 में सुभाषचंद्र बोस की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन में राष्ट्रीय मामलों और अंतरराष्ट्रीय मसलों से संबंधित कई प्रस्ताव पारित किए। लेकिन कांग्रेस ने असली संकट का सामना त्रिपुरा अधिवेशन में किया। इस बार अध्यक्ष पक्ष के लिए चुनाव हुए और सुभाषचंद्र बोस ने पट्टाभिसीतारमैय्या को 1337 के मुकाबले 1580 मतों से पराजित किया। इसे वामपक्ष की विजय माना गया, क्योंकि दक्षिण पक्ष ने सीतारमैय्या का खुल समर्थन किया था।

1939 में जब ब्रिटेन ने एक पक्षीय घोषणा करके भारत को विश्व युद्ध में झोंक दिया, तब इसके विरोध में कांग्रेस मंत्रालयों ने त्यागपत्र दे दिया।

वामपन्थी आन्दोलन

बीसवीं सदी के दूसरे दशक के अंतिम वर्षों और तीसरे दशक के आरंभ में भारत में एक शक्तिशाली वामपक्ष का उदय हुआ, जिसने राष्ट्रीय आंदोलन में राजनीतिक स्वतन्त्रता के लक्ष्य के साथ स्पष्ट सामाजिक एवं आर्थिक अन्तर्वस्तु का योग किया। जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस इस मूलभूत परिवर्तनों के आरम्भिक नेता बने कांग्रेस के अन्दर और बाहर पार्टियां भी अस्तित्व में आईं—भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और अनेक समाजवादी पार्टी।

वामपंथ के उदय में जिन कारकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी, उनमें 1917 की रूसी क्रान्ति मूल प्रेरणा थी। फिर, असहयोग आन्दोलन की वापसी ने आन्दोलित युवकों को साम्यवादी विकल्प की ओर आकृष्ट किया। नेहरू और सुभाष ने अपने देशव्यापी दौरों के द्वारा साम्राज्यवाद, देशी राज्यों और जमींदारी प्रथा के खिलाफ समाजवादी विचारधारा को अपनाने के लिए लोगों का आह्वान किया। उग्रवादी क्रान्तिकारी भी समाजवाद की ओर मुड़े। बढ़ रहे ट्रेड यूनियन एवं किसान-आन्दोलन ने भी इसे प्रभावित किया। तीसरे दशक की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी ने पूंजीवादी व्यवस्था को गहरा संकट में पहुंचाया और लोग मार्क्सवाद एवं समाजवाद की ओर आकृष्ट हुए।

संगठनात्मक प्रयास

साम्यवादी: संगठनात्मक स्तर पर अक्टूबर, 1920 में ताशकंद में एम. एन. राय एवं अन्य 7 भारतीयों ने 'भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी' की स्थापना की। भारत में कानपुर में दिसम्बर, 1925 में 'कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया' की स्थापना हुई। यह यद्यपि कांग्रेस से पृथक् स्वतंत्र पार्टी थी, तथापि इसके में सभी सदस्यों को कांग्रेस का सदस्य बनने के लिए कहा जाता था। कांग्रेस के अन्दर भी कई वामपंथी संगठन बन रहे थे, जो 1928 में मिलकर 'कर्कर एण्ड पीजेंट्स पार्टी' के रूप में विकसित हुआ। इसका उद्देश्य कांग्रेस के

वामपंथ और नेहरू

राष्ट्रीय आन्दोलन को समाजवादी दृष्टि प्रदान करने में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई पंडित जवाहर लाल नेहरू ने। 1920-21 में पूर्वी उत्तरप्रदेश के किसान-आन्दोलन के साथ सम्पर्क के दौरान नेहरू के विचारों में समाजवादी पुट आए। फिर; 1927 में उन्होंने 'उपनिवेशवादी दमन एवं साम्राज्यवाद' के विरोध में आयोजित ब्रुसेल्स के अन्तरराष्ट्रीय कांग्रेस में हिस्सा लिया, जिसमें विश्व भर के साम्यवादियों से उनका सम्पर्क हुआ। उसी वर्ष उन्होंने रूस की यात्रा भी की।

1929 में नेहरू लाहौर के ऐतिहासिक कांग्रेस-अधिवेशन के अध्यक्ष बने और वे समाजवाद एवं सामजवादी विचारों के प्रतीक बन गए। 1936 और 1937 में वे पुनः अध्यक्ष चुने गए। 1938 और 1939 में सुभाष चन्द्र बोस अध्यक्ष बने। इन अधिवेशनों में कांग्रेस के घोषणापत्रों में समाजवादी आर्थिक नीतियों के प्रस्ताव पारित किए गए। अपनी पुस्तकों, लेखों और भाषणों में भी नेहरू ने समाजवादी विचारों को प्रचारित किया।

नेहरू ने यद्यपि वर्ग-संघर्ष अस्वीकार करने पर तथा 'ट्रस्टीशिप सिद्धान्त' के लिए गांधीजी की आलोचना की, तथापि उन्होंने अन्य साम्यवादियों की तरह गांधीजी से पूर्ण पार्थक्य की कड़ी आलोचना ही की। नेहरू की प्रतिबद्धता का एक विशेष ढांचा था, जिसमें आर्थिक-सामाजिक सुधारों पर साम्राज्यवादी संघर्ष को वरीयता दी गई थी, जब तक भारत पर विदेशी शासन था। इसीसे, नेहरू ने ऐसे किसी संगठन का प्रस्ताव नहीं माना, जो कांग्रेस से पृथक् या स्वतंत्र हो अथवा गांधीजी तथा दक्षिणपंथी कांग्रेसियों से नाता ही न रखे। नेहरू वामपंथ को राष्ट्रीय धारा से अलग सम्प्रदाय भर नहीं होने देना चाहते थे।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

कम्युनिस्टों ने कांग्रेसी नेतृत्व पर गद्दारी के आरोप लगाए।

सीमाएं: राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान वामपंथ की कुछ अपनी सीमाएं रही। कांग्रेस के प्रभावशाली नेतृत्व के साथ वामपक्ष की लड़ाई हमेशा गलत मुद्दों पर हुई। और, जब तनाव बिखराव के बिन्दु तक पहुंचता था, तब वामपक्ष या तो उनके पीछे चलने के लिए बाध्य होता था (C.S.P.) अथवा राष्ट्रीय आन्दोलन में ठीक वक्त पर अलग-अलग पड़ जाता था (C.P.I.)। वामपंथी भारतीय यथार्थ को ग्रहण करने में भी प्रायः असफल रहे और बाह्य निर्देशों पर क्रियाशील हुए। जवाहरलाल नेहरू और कुछ हद तक समाजवादी पार्टी अपवाद रही। समूचा वामपथ कांग्रेस के प्रभावशाली नेतृत्व को पूंजीपतियों का नेता मानता था, बातचीत के द्वारा समस्या सुलझाने की कांग्रेसी नीति को साम्राज्यवाद के साथ समझौते का प्रयास माना जाता था और संवैधानिक सीमा के भीतर संघर्ष करने की इनकी नीति को 'स्वतंत्रता के लिए संघर्ष से मुंह मोड़ना' माना जाता था। वामपंथी अहिंसक आन्दोलन की तुलना में वे 'आधारहीन' सशस्त्र संघर्ष की वकालत में लगे रहे। वे गांधीवादी रणनीति को समझने में भी प्रायः असमर्थ रहे।

वामपंथियों की एक बहुत बड़ी कमी यह भी रही कि कुछ समय को छोड़ दें, तो विभिन्न दल, गुट एवं व्यक्ति संयुक्त रूप से काम करने में हमेशा असफल ही रहे। 1935-40 की अवधि को छोड़कर C.P.I. और C.S.P. एक-दूसरे को गद्दार कहते रहे। नेहरू और सुभाष के विवाद जगजाहिर होने लगे और बोस को कांग्रेस से अलग भी होना पड़ा। इससे वामपंथ की तो हानि हुई ही, गुटबंदियों के कुप्रभाव राष्ट्रवादी, मजदूर एवं किसान आंदोलनों को भी झेलने पड़े।

उपलब्धियां: अपनी तमाम सीमाओं एवं असंगतियों के बावजूद वामपंथी आन्दोलन को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर और दीर्घकाल में सामाजिक-आर्थिक नीति पर प्रभाव डालने में पर्याप्त सफलता मिली। किसानों एवं मजदूरों के आन्दोलन को सशक्त बनाने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। कांग्रेस की नीतियों को इसने बहुत प्रभावित किया। दक्षिणपंथियों समेत कांग्रस ने यह स्वीकार किया कि भारतीय जनता की दरिद्रता और मुसीबतों की जड़ सिर्फ। उपनिवेशवादी शासन नहीं है, बल्कि भारतीय समाज का आंतरिक सामाजिक-आर्थिक ढांचा भी है और इसलिए इसमें मूलभूत परिवर्तन आवश्यक है। 1931 के कराची-अधिवेशन, 1936 के फैजपुर-अधिवेशन, 1936 के कांगेस के चुनाव-घोषणापत्र तथा 1938 की 'राष्ट्रीय योजना समिति' की स्थापना में वामपंथी विचारों के प्रभाव के परिणामस्वरूप समाजवादी आर्थिक नीतियों का पक्ष लिया गया था। ऑल इण्डिया स्टूडेण्ट्स फेडरेशन, पीजेंट्स वर्कर्स एसोसिएशन की स्थापना ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल कॉन्फरेंस का आयोजन, अखिल भारतीय महिलाओं के सम्मेलन सहयोग आदि वामपन्थी आन्दोलन की अन्य उपलब्धियां थीं।

साम्प्रदायिकता का विकास

1937 के पश्चात

1937 के प्रांतीय चुनावों में निराशाजनक प्रदर्शन के पश्चात मु लीग ने साम्प्रदायिकता के मुद्दे को और तीव्र करने का निश्चय किया। अब मुसलमानों को एक अल्पसंख्यक समुदाय की जगह एक पृथ के रूप में प्रस्तुत करना प्रारंभ कर दिया। (1930 के दशक में सर्वप्र युवा मुस्लिम बुद्धिजीवी रहमत अली ने 'पृथक मुस्लिम राष्ट्र' की अ प्रतिपादित की तथा बाद में कवि इकबाल ने इसका और प्रचार किय पश्चात सम्प्रदायवाद एक संगठित जन-आंदोलन के रूप में प्रारं जिसका मुख्य आधार समाज का मध्य एवं उच्च वर्ग था। जेड एफ.एम. दुर्रानी एवं फैज-उल-हक इत्यादि ने कांग्रेस के वि आंदोलन प्रारंभ कर दिया। अब साम्प्रदायिकता का स्वरूप उग्र उसके चरित्र में भय, घृणा, जुल्म, दमन एवं हिंसा जैसे शब्दों हो गया।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

1937 तक साम्प्रदायिकता का नरमपंथी दौर जारी रहा, जो मुख्यतया बचाव तथा आरक्षण जैसे मुद्दों के आसपास केंद्रित रहा। किंतु इसके बाद वह तेजी से उग्रवादी या फासीवादी तौर-तरीके अपनाने लगी। उसका सामाजिक आधार अब तेजी से व्यापक होने लगा तथा जनसामान्य को गिरफ्त में लेने के प्रयास होने लगे। इसके लिये मुख्यतया शहरी निम्न-मध्य वर्ग को आधार बनाया गया। इस वर्ग को उभारकर सुसंगठित एवं आक्रामक साम्प्रदायिक राजनीति प्रारंभ करने की कोशिश की जाने लगी। अभी तक सम्प्रदायवादी राजनीति का मुख्य आधार उच्च वर्ग था अतः निम्न-मध्य वर्ग को अपनी चपेट में लेने तथा साम्प्रदायिकता को जनआंदोलन का स्वरूप देने के लिये भय तथा घृणा जैसी अतार्किक भावनाओं का सहारा लिया गया। हिन्दुओं के उग्रवादी साम्प्रदायिक राष्ट्रवादी संगठनों यथा-हिन्दू महासभा तथा आर.एस.एस. एवं गोलवकर के विचारों ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को उग्रवादी स्वरूप धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उग्रवादी साम्प्रदायिकता के उदय के अनेक कारण थे, जो इस प्रकार हैं—

1. सिद्धांतवादी—मौलिकतावादी अवधारणा का विकास, प्रतिक्रियावादी तत्वों ने साम्प्रदायिकता का सहारा लेकर अपना सामाजिक आधार पुख्ता किया।

2. उपनिवेशवादी शासन ने राष्ट्रवादियों को विभाजित करने हेतु अन्य सभी माध्यमों का सहारा लिया।

3. सम्प्रदायवादी मानसिकता को चुनौती देने की प्रारंभिक असफलताओं ने उग्रवादी साम्प्रदायिकता को रेखांकित एवं सुदृढ़ किया।

1937-39

मु. अली जिन्ना ने समझौते की उन सभी संभावनाओं को समाप्त कर दिया, जब उन्होंने यह असंभव मांग प्रस्तुत की कि कांग्रेस स्वयं को हिन्दू संगठन घोषित करे तथा मुस्लिम लीग को मुसलमानों की मुख्य प्रतिनिधि संस्था के रूप में मान्यता दे।

24 मार्च 1940

मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया, जिसमें कहा गया "अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अधिवेशन में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि भारत में ऐसी कोई भी संवैधानिक योजना सफल और मुसलमानों को स्वीकृत नहीं होगी, जो कि अग्रलिखित सिद्धांतों पर आधारित न हो: "भौगोलिक स्थिति से एक-दूसरे से लगे हुये प्रदेश, यथानुसार आवश्यक परिवर्तनों सहित इस प्रकार गठित किये जायें ताकि वहां मुलसमान बहुमत में हों जैसा कि भारत के उत्तर-पश्चिमी और पूर्वी प्रदेश और इनको मिलाकर एक 'स्वतंत्र' राज्य बना दिया जाये और उसमें सम्मिलित प्रदेश स्वशासी और प्रभुसत्तासपन्न हों तथा जिन अन्य स्थानों में मुसलमान अल्पमत में हो वहां उन्हें पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जाये"।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान

ब्रिटिश सरकार ने भारतियों का सक्रिय सहयोग पाने के उद्देश्य से द्धोपरांत संविधान सभा बनाने का आश्वासन दिया लेकिन साथ ही उसने न्यसंख्यक तुष्टीकरण की नीति भी अपनायी। उसने सभी अल्पसंख्यक दायों को भरोसा दिलाया कि वह किसी भी ऐसी सरकार को मान्यता देगी जिसमें देश के सभी महत्वपूर्ण सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व न हो। कार से उसने मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्र सिद्धांत को अपनी मौन स्वीकृति मुस्लिम लीग ने इस विशेषाधिकार का भरपूर-प्रयोग किया तथा हर अवसर पर पृथक पाकिस्तान की मांग उठायी। लीग ने अगस्त क्रेप्स प्रस्ताव, शिमला सम्मेलन तथा मंत्रिमंडलीय शिष्टमंडल पेशन) के प्रस्तावों में पृथक पाकिस्तान की मांग को पूर्णरूपेण ो जाने की संभावनायें तलाशीं। अंततः मुस्लिम लीग की पृथक ी मांग पूर्ण हो गयी, जब 1947 में मुस्लिम बहुल प्रांतों—पंजाब, ान, उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत तथा बंगाल को मिलाकर एक न पाकिस्तान का गठन हुआ।

द्वितीय विश्व युद्ध और राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया

युद्ध के पूर्व कांग्रेस की स्थिति

कांग्रेस, ब्रिटेन की उम्मीद से कहीं अधिक फासीवाद, सैन्यवाद तथा साम्राज्यवाद की विरोधी हो गयी। किन्तु युद्ध में समर्थन का प्रस्ताव दो आधारभूत मांगों पर आधारित था:

1. युद्धोपरांत संविधान सभा की बैठक आहूत की जाती तथा स्वतंत्र भारत की राजनीतिक संरचना पर विचार करेगी। तथा

2. अतिशीघ्र, केंद्र में किसी प्रकार की वास्तविक एवं उत्तरदायी की स्थापना की जाये।

वायसराय लिनलिथगो ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस ने स्पष्ट किया कि युद्ध में भारतीयों का समर्थन प्राप्त करने के लिये सरकार को उक्त मांगे मानना अत्यन्त आवश्यक है।

कांग्रेस कार्य समिति की वर्धा में आयोजित बैठक (10-14 सितम्बर 1939): इस बैठक में भारत द्वारा ब्रिटेन को युद्ध में समर्थन देने के मुद्दे पर विभिन्न विचार प्रतिध्वनित हुये—

गांधीजी मित्र राष्ट्रों के प्रति सहानुभूति प्रकट की। गांधीजी का था कि पश्चिम यूरोप के लोकतांत्रिक राज्यों और हिटलर का नेतृत्व स्वीकार करने वाले निरंकुशतावादी राज्यों में स्पष्ट अंतर है।

सुभाषचन्द्र बोस और समाजवादी इनका तर्क था कि चूंकि युद्ध साम्राज्यवादी है तथा दोनों पक्ष अपने-अपने औपनिवेशिक हितों के लिये युद्धरत हैं, फलतः किसी एक पक्ष का समर्थन नहीं किया जा सकता। कांग्रेस को इस स्थिति का लाभ उठाकर स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये तुरंत सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ कर देना चाहिये।

नेहरू ने फासीवाद और लोकतंत्र के बीच स्पष्ट भेद प्रकट किया। उनका दृष्टिकोण यह था कि फ्रांस, ब्रिटेन और पोलैंड का पक्ष न्यायोचित है किन्तु फ्रांस और ब्रिटेन सांम्राज्यवादी नीतियों वाले देश हैं और द्वितीय विश्वयुद्ध, प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् पूंजीवाद के गहराते हुये अंतर्विरोधों का परिणाम है। अतः भारत को स्वतंत्र होने से पूर्व न ही युद्ध में सम्मिलित होना चाहिये और न ही ब्रिटेन की परेशानियों का लाभ उठाकर आंदोलन प्रारम्भ करना चाहिये।

कांग्रेस कार्यसमिति ने प्रस्ताव पारित कर फासीवाद तथा नाजीवाद की भर्त्सना की। प्रस्ताव में कहा गया कि—(क) भारत किसी ऐसे युद्ध में सम्मिलित नहीं हो सकता, जो प्रत्यक्षतः लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के लिये लड़ा जा रहा हो, जबकि खुद उसे ही स्वतंत्रता से वंचित रखा जा रहा हो। (ख) यदि ब्रिटेन प्रजातांत्रिक मूल्यों तथा स्वाधीनता की रक्षा के लिये युद्ध कर रहा है तो उसे भारत को स्वाधीनता प्रदान कर यह सिद्ध करना चाहिये। (ग) सरकार को अतिशीघ्र ही अपने युद्ध के उद्देश्यों को सार्वजनिक बनाना चाहिये तथा यह भी स्पष्ट करना चाहिये कि भारत पर किस तरह के लोकतांत्रिक सिद्धांतों को लागू किया गया था।

कांग्रेस का नेतृत्व ब्रिटिश सरकार और वायसराय को पूरा मौका देना चाहता था।

सरकार की प्रतिक्रिया

ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रिया आंतरिक तौर पर नकारात्मक थी। लिनलिथगो ने अपने वक्तव्य में (17 अक्टूबर, 1939) मुस्लिम लीग तथा देशी रियासतों को कांग्रेस के विरुद्ध उकसाने की कोशिश की। इस अवसर पर सरकार ने—

- ब्रिटेन के युद्ध पर, इससे अधिक कुछ भी कहने से इन्कार कर दिया कि ब्रिटेन भेदभावपूर्ण आक्रमण का प्रतिरोध कर रहा है।
- भविष्य के लिये यह वायदा किया कि युद्धोपरांत सरकार, "कई दलों, समुदायों और हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली शक्तियों भारतीय राजाओं" से इस मुद्दे पर विचार-विमर्श करेगी कि 1935 के सरकार अधिनियम में किस प्रकार के संशोधन किये जायें।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सत्कालीन परिस्थितियां जन सत्याग्रह के प्रतिकूल हैं, एवं

- जनता अभी किसी भी प्रकार के संघर्ष के लिये तैयार नहीं है।

अतः इसके स्थान पर आवश्यक यह है कि सांगठनिक रूप से कांग्रेस को मजबूत बनाया जाये, जनता को राजनीतिक प्रशिक्षण दिया जाये, उसे संघर्ष हेतु तैयार किया जाये तथा सरकार से तब तक विचार-विमर्श किया जाये जब तक यह सार्वजनिक न हो जाये कि विचार-विमर्श से समस्या का समाधान नहीं हो सकता तथा इसके लिये उपनिवेशिक शासन जिम्मेदार है। इसके पश्चात् ही आंदोलन प्रारम्भ किया जाना चाहिये।

कांग्रेस के रामगढ अधिवेशन (मार्च 1940) मे पारित किये गये प्रस्ताव में गांधीजी तथा उनके समर्थकों के इन विचारों को पूर्ण महत्ता प्रदान की गयी। इस प्रस्ताव में कहा गया कि "जैसे ही कांग्रेस संगठन संघर्ष के योग्य हो जाता है या फिर परिस्थितियां इस प्रकार बदल जाती हैं कि संघर्ष निकट दिखाई दे, वैसे ही कांग्रेस, सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ कर देगी।"

सुभाषचन्द्र बोस और उनके फारवर्ड ब्लाक, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी तथा रायवादियों इत्यादि वामपंथी समूहों का तर्क था कि यह युद्ध एक साम्राज्यवादी युद्ध है तथा यही उचित समय है जबकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध चारों ओर से युद्ध छेड़कर स्वतंत्रता हासिल कर ली जाये। इनका मानना था कि जनता संघर्ष के लिये पूरी तरह तैयार है तथा सिर्फ आंदोलन प्रारम्भ किये जाने की प्रतीक्षा कर रही है। इन्होंने स्वीकार किया कि कांग्रेस संगठन की कमजोरी तथा साम्प्रदायिक कटुता जैसी समस्यायें अवश्य विद्यमान हैं, किन्तु जनसंघर्ष के प्रवाह में ये सारी समस्यायें बह जायेंगी। इन्होंने तर्क दिया कि संगठन संघर्ष के पहले तैयार नहीं किया जाता अपितु इसका निर्माण संघर्ष प्रारम्भ होने के पश्चात् होता है। फलतः कांग्रेस को अतिशीघ्र आंदोलन प्रारम्भ कर देना चाहिये।

यहां तक कि सुभाषचन्द्र बोस ने इस बात का प्रस्ताव रखा कि यदि कांग्रेस शीघ्र ही सत्याग्रह प्रारम्भ करने के मुद्दे पर उनका साथ नहीं देती तो वामपंथी उससे नाता तोड़ लें तथा समानांतर कांग्रेस का गठन कर अपनी ओर से आंदोलन प्रारम्भ करें। किन्तु कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी ने सुभाष चन्द्र बोस के इस प्रस्ताव से असहमति प्रकट की।

जवाहरलाल नेहरू का झुकाव दोनों पक्षों की ओर था। एक ओर उन मित्र राष्ट्रों के साम्राज्यवादी चरित्र का एहसास था तो दूसरी ओर वे ऐस कोई कदम नहीं उठाना चाहते थे, जिससे यूरोप में नाजीवाद के समर्थ हिटलर की विजय आसान हो जाये। एक ओर उनकी सम्पूर्ण मंशा अ राजनीतिक चिंतन त्वरित आंदोलन प्रारम्भ किये जाने को उद्यत परिल हो रहा था तो दूसरी ओर वे नाजी विरोधी संघर्ष और जापान विरोधी को दुर्बल बनाये जाने के पक्षधर भी नहीं थे। बहरहाल नेहरू ने अंत में व नेतृत्व और गांधीजी के बहुमत का समर्थन करने का ही निर्णय वि

पाकिस्तान प्रस्ताव—लाहौर (मार्च 1940)

23 मार्च 1940 को मुस्लिम लीग का वार्षिक अधिवेशन लाहौर इस अधिवेशन में प्रसिद्ध 'पाकिस्तान प्रस्ताव' पारित किया गया। इस की रुपरेखा तैयार करने में खलीक उज्जमां, फजल-उल-हक तथा हयात खां ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस प्रस्ताव को फजल ने प्रस्तुत किया तथा खलीक उज्जमां ने इसका अनुमोदन किया। में कहा गया कि "भौगोलिक स्थिति से एक-दूसरे से लगे हुये प्रदे परिवर्तनों के साथ इस प्रकार गठित किये जायें ताकि वहां मुस बहुसंख्यक हो जायें। जैसे कि भारत के उत्तर-पश्चिमी और पू मिलाकर एक स्वतंत्र राज्य बना दिया जाये और उसमें स प्रभुसत्ता सम्पन्न और स्वशासी हों.....तथा जिन राज्यों अल्पसंख्यक हों वहां उनके हितों की सुरक्षा के लिये आवश्य

अगस्त प्रस्ताव

अक्टूबर-नवम्बर, 1939 में प्रान्तीय मंत्रिमण्डलों ने और इसके बाद भी कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की ओर दोस

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

और केन्द्र में एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की मांग को आपसी के समक्ष रखा परन्तु अंग्रेजों ने इस मांग को अस्वीकृत कर दी। भारतीयों की मांग को अंग्रेजी हुकूमत ने अस्वीकृत कर दिया। भारतीयों की मांग की जगह लॉर्ड लिनलिथगो ने 8 अगस्त 1940 को एक प्रस्ताव रखा, जो अगस्त प्रस्ताव के नाम से जाना जाता है।

अगस्त प्रस्ताव के अनुसार वायसराय की कार्यकारिणी में जनता के प्रतिनिधियों को नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। सभी दलों को मिलाकर एक युद्ध सलाहकार समिति के गठन की घोषणा की गई। इस घोषणा में यह भी कहा गया कि अंग्रेजी हुकूमत भारत के प्रमुख प्रतिनिधियों को लेकर एक संविधान सभा बनाने की इच्छुक है, जो देश के भावी संविधान का निर्माण करेगी। परन्तु यह कार्य युद्ध के बाद ही होगा। अल्पसंख्यकों को यह आश्वासन दिया गया कि अंग्रेजी हुकूमत किसी भी वैसे शासन को सत्ता नहीं सौंपेगी, जो भारत में अल्पसंख्यकों के हितों के बिना सरकार की स्थापना करे। दूसरे शब्दों में, अल्पसंख्यकों के हितों की स्थापना नहीं की जाएगी।

वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो का यह प्रस्ताव भारतीयों में भावनात्मक स्थिति पैदा करने वाला था। इस प्रस्ताव द्वारा विश्वयुद्ध में भारतीयों का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की जा रही थी और उसके द्वारा साम्प्रदायिकता का जहर घोला जा रहा था भारतीयों में। इसलिए, राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। मुस्लिम लीग ने भी इस प्रस्ताव का विरोध किया, क्योंकि इस प्रस्ताव में पृथक् पाकिस्तान को स्वीकृति नहीं दी गई थी।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि साइमन कमीशन की तरह ही अगस्त प्रस्ताव बिल्कुल निराधार साबित हो गया। उस प्रस्ताव को भारतीयों ने पूरी तरह से अस्वीकृत कर दिया। हां, मुसलमानों में साम्प्रदायिकता का जहर घोलने में पूरी तरह से सफल रहा यह प्रस्ताव।

व्यक्तिगत सत्याग्रह 1940-41

अगस्त प्रस्ताव से मोह-भंग होने पर कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ करने का निर्णय किया, लेकिन इसे शुरू करने के मामले में कांग्रेस के दो मत थे। स्वयं गांधी जी का मानना था कि वातावरण नागरिक अवज्ञा के अनुकूल नहीं है। जो लोग नागरिक अवज्ञा की वकालत कर रहे थे, वे गांधीजी को यह विश्वास दिलाना चाह रहे थे कि एक बार आंदोलन शुरू हो जाए, तो मतभेद समाप्त हो जाएंगे और सभी इसकी सफलता के लिए काम करने लगेंगे। कांग्रेसी समाजवादी और अखिल भारतीय किसान सभा यथाशीघ्र आंदोलन शुरू करने के पक्ष में थे।

जब गांधीजी को दृढ़ विश्वास हो गया कि अंग्रेज भारत में अपनी नीति में कोई सुधार नहीं करेंगे (गांधीजी ने सितम्बर 1940 में शिमला में वाइसरॉय के साथ लम्बी बैठकें की) तो उन्होंने सत्याग्रह शुरू करने का फैसला किया। महात्मा गांधीजी ने तय किया कि हर इलाके में कुछ चुने हुए लोग व्यक्तिगत त्याग्रह करें। सत्याग्रही की मांग यह होगी कि युद्ध में हिस्सा लेने के लाफ प्रचार करने के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिए। ाग्रही सार्वजनिक रूप से घोषणा करेंगे कि आर्थिक या शारीरिक दृष्टि टिश सरकार के युद्ध-कार्य में मदद करना गलत है, औचित्य सिर्फ त का है कि अहिंसक प्रतिरोध के द्वारा युद्ध-मात्र का विरोध किया नोवा भावे पहले सत्याग्रही थे (17 अक्तूबर 1940) और जवाहरलाल रे। नवम्बर 1940 और फरवरी 1941 के मध्य बहुत से प्रमुख जेल गए, लेकिन भागीदारी की सीमित प्रकृति और गांधीजी द्वारा र लगाए गए प्रतिबंधों के कारण यह आंदोलन कुछ अधिक कर सका। दिसम्बर 1941 में कांग्रेस कार्यसमिति ने आंदोलन ने का फैसला किया। इस समय तक युद्ध ने एक नया मोड़ न की हार पर हार हो रही थी और जापानी फौजें दक्षिण-पूर्व की थीं। ब्रिटेन पर अमरीका सोवियत संघ व चीन यह

दबाव डाल रहे थे कि वह अपनी भारतीय नीति पर पुनर्विचार करे। ने अनेक राजनीतिक बंदियों को रिहा कर दिया। जापान के युद्ध में प्रवेश पतन के बाद अंग्रेज सरकार ने क्रिप्स कमीशन भारत भेजने का निर्णय

क्रिप्स मिशन

भारत के राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के उद्देश्य से ब्रिटिश संसद सदस्य तथा मजदूर नेता सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भेजा। प्रधानमंत्री चर्चिल ने मार्च 1942 में एक मिशन भारत भेजा। हालांकि इस मिशन के नेतृत्व में भारतीयों को सहयोग प्रदान करना था, परन्तु वास्तविक उद्देश्य, युद्ध में भारतीयों को सहयोग प्रदान करने के लिए फुसलाना था। सर क्रिप्स, ब्रिटिश युद्ध मंत्रिमंडल के सदस्य भी थे। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का सक्रियता से समर्थन किया।

क्रिप्स मिशन क्यों भेजा गया: 'जहां एक ओर दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्रिटेन को करारी हार का सामना करना पड़ा, वहीं दूसरी ओर ब्रिटेन पर जापान के आक्रमण का भय दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। इस परिस्थिति में ब्रिटेन को भारत से समर्थन की कोई उम्मीद नहीं दिखाई दे रही थी। ब्रिटेन पर मित्र राष्ट्रों (अमेरिका, सोवियत संघ एवं चीन) का यह दबाव डाला जा रहा था कि वो भारत का समर्थन प्राप्त करने के लिए भारतीयों ने इस शर्त पर मित्र राष्ट्रों को समर्थन देना स्वीकार किया था कि भारत को ठोस उत्तरदायी शासन का त्वरित हस्तांतरण किया जाये तथा युद्धोपरांत भारत को पूर्ण आजादी देने का वचन दिया जाये।

मुख्य प्रावधान: क्रिप्स मिशन के मुख्य प्रावधान निम्नानुसार थे:

1. डोमिनियन राज्य के दर्जे के साथ एक भारतीय संघ की स्थापना की जायेगी; यह संघ राष्ट्रमंडल के साथ अपने संबंधों के निर्धारण में स्वतंत्र होगा तथा संयुक्त राष्ट्र संघ एवं अन्य अंतरराष्ट्रीय निकायों एवं संगठनों में अपनी भूमिका को खुद ही निर्धारित करेगा।

2. युद्ध की समाप्ति के पश्चात् नये संविधान निर्माण हेतु संविधान निर्मात्री परिषद का गठन किया जायेगा। इसके कुछ सदस्य प्रांतों की विधायिकाओं द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे तथा कुछ (रियासतों का प्रतिनिधित्व करने के लिये) राजाओं द्वारा मनोनीत किये जायेंगे।

3. ब्रिटिश सरकार, संविधान निर्मात्री परिषद द्वारा बनाये गये संविधान को अग्रलिखित शर्तों के अधीन स्वीकार करेगा:- (i) संविधान निर्मात्री परिषद द्वारा निर्मित संविधान जिन प्रांतों को स्वीकार नहीं होगा, वे भारतीय संघ से पृथक होने के अधिकारी होंगे। पृथक होने वाले प्रांतों को अपना पृथक संविधान बनाने का अधिकार होगा। देशी रियासतों को भी इस प्रकार का अधिकार होगा; तथा (ii) नवगठित संविधान निर्मात्री परिषद के साथ ब्रिटिश सरकार सत्ता के हस्तांतरण तथा प्रजातीय तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के मुद्दे को आपसी समझौते द्वारा हल करेंगे।

4. उक्त व्यवस्था होने तक भारत के सुरक्षा संबंधी दायित्वों का निर्वाह ब्रिटेन करेगा; देश की सुरक्षा का नियंत्रण एवं निर्देशन करेगा; तथा गवर्नर-जनरल की समस्त शक्तियां पूर्ववत् बनी रहेंगी।

क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों का पूर्ववर्ती प्रस्तावों से भिन्न होना: क्रिप्स मिशन के प्रस्ताव इसके पूर्ववर्ती प्रस्तावों से अनेक अर्थों में भिन्न थे:

- संविधान के निर्माण का अधिकार अब वास्तविक तौर पर भारतीयों के हाथों में था।
- संविधान निर्मात्री सभा के गठन हेतु एक ठोस योजना बनायी गयी थी।
- प्रांतों को अपना पृथक संविधान बनाने का विकल्प दिया गया था, यह व्यवस्था, अप्रत्यक्ष रूप से भारत का विभाजन सुनिश्चित करती थी।
- स्वतंत्र भारत के लिये यह अधिकार सुनिश्चित किया गया था कि उसे राष्ट्रमंडल से पृथक होने का अधिकार होगा।
- भारतीयों को प्रशासन में भागीदारी का भरपूर अवसर प्रदान किया जाना सुनिश्चित किया गया था।

क्रिप्स मिशन क्यों असफल हुआ: क्रिप्स मिशन के प्रस्ताव भारतीय

WWW.GRADESETTER.COM